Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२५९६८

ओ३म् खम्ब्रह्म

रुद्रग्रन्थमाला का चतुर्थ पुष्प-

महर्षि दयानन्दजीकृत वेदभाष्यानुशीलन

R
15.1
KUS-M

...यानन्द सरस्वती की पुण्यस्मृति में समर्पित

लेखक :

...धानकर्त्ता शिवपूजनसिंह कुशवाहा 'पथिक'

सिद्धान्तशास्त्री साहित्यालङ्कार

प्रकाशक :

जयदेव ब्रदर्स, आत्माराम पथ, बडोदा

प्रथमसंस्करण मू० १)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
151123
25178

ओ३म्
पुस्तक संख्या 95.9/23
पञ्जिका-संख्या . 25962
पुस्तक पर सर्व प्रकार की निशानियां लगाना वर्जित है। कोई सज्जन पन्द्रह दिन से अधिक देर तक पुस्तक अपने पास नहीं रख ... । अधिक देर तक रखने के लिये पुनः आज्ञा ... ी चाहिये।

वेद का अन्तिम और प्रामाणिक संकलन
किया व्यास ने तमाम वेद की पांच
युक्ति युक्त समीक्षा की है, लेखक
... प्रयास अति स्तुत्य है।
... । इस ट्रेक्ट का खूब
—आर्य

... में प्रतिपादित
...का का
...र्थ)

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय
कृपया पुस्तक के ऊपर कोई निशान आदि न लगायें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१५११२१-५

रुद्रग्रन्थमाला

चतुर्थपुष्प

महर्षि दयानन्दजी कृत

वेद भाष्यानुशीलन

पुस्तकालय
गुरुकुल कांगड़ी

लेखक :

वैदिक अनुसन्धानकर्त्ता
श्री. शिवपूजनसिंह कुशवाहा 'पथिक' साहित्यालंकार,
सिद्धान्त शास्त्री कानपुर

15.1,23
25178

★

: प्रकाशक :
जयदेव ब्रदर्स बड़ोदा

★

Stock Verification-2024

वि० मूल्य १)
२००७

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ओ३म् खम्ब्रह्म

समर्पण

★

गुरुकुल काङ्गडी के प्रतिष्ठित स्नातक विद्वद्वरेण्य श्रद्धास्पद पण्डित धर्मदेवजी सिद्धान्तालंकार, विद्यावाचस्पति

★

संपादक :

'सार्वदेशिक' देहली

के

करकमलों में सादर

समर्पित

★

भवदीय :

पदारविन्द मकरन्द मिलिन्द

शिवपूजनसिंह कुशवाहा 'पथिक'

जयदेव ब्रदर्स बड़ोदा के प्रबन्धसे जागृति मुद्रणालय बड़ोदा में मुद्रित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ओ३म् खम्ब्रह्म

★

लेखक

अनुसन्धानकर्त्ता शिवपूजनसिंह

कुशवाहा 'पथिक' सिद्धान्त शास्त्री,

साहित्यालंकार

★

Book Verification-20..

★

भूमिका लेखक

शान्तिप्रिय

आतमारामजी

(अमृतसरी)

★

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रुद्रग्रन्थमाला

शास्त्री लंकार

लेखक श्री शिवपूजन सिंह कुशवाहा 'पथिक' सिद्धान्त[redacted] साहित्य[redacted]

अथर्व वेद की प्राचीनता जो लोग अथर्ववेद को वेद नहीं मानते और उसमें जादुटोना झाड़, फूंक, मारण, मोहन, उच्चाटन के मन्त्र हो मानते हैं उन को इस पुस्तक में मनोरंजक शैली में तर्क पूर्ण उत्तर दिया गया है। प्रत्येक वेद प्रेमी को देखने योग्य है। मू० ।≈)

आर्य समाज के द्वितीय नियम की व्याख्या मू० ॥)

"स्वरूप आकर्षक, कागज श्वेत छपाई उत्तम। इस पुस्तक के लिखने में 'पथिक' जी ने जो परिश्रम किया है उसके लिये वे बधाई के पात्र हैं। आर्य समाज के सभी नियम सार्वभौम तथा सार्वदेशिक हैं। उनमें से दूसरा नियम सबसे बडा है किन्तु सबसे महत्वपूर्ण भी है। विशेष रूप में प्रयुक्त कठिन शब्दों की व्याख्या इस पुस्तक में अत्यन्त सुन्दर तथा मनोहर रूप में की गई है। प्रमाणों की तो भरमार है। ईश्वर दयालु और न्यायकारी दोनों कैसे हो सकता है, सर्व शक्तिमान् है। तो क्या अपने को मार सकता है या स्वय पैदा क्यों नहीं हो सकता इत्यादि अनेक शङ्काओंका मनोरंजक शैली में सप्रमाण समाधान किया गया है। पुस्तक का अधिक से अधिक प्रचार होना चाहिये। आशा है अन्य नियमों की व्याख्या भी शङ्का समाधान सहित लिख कर जनता को लाभ पहुंचाएंगें। —वेदवाणी

"इस में लब्ध प्रतिष्ठ सुयोग्य लेखक ने आ. स. के द्वितीय नियम की **विशाल व्याख्या** की है। नियमान्तर्गत सच्चिदानन्द, अजर, निराकार, अनादि, अनन्त, शुद्ध आदि प्रत्येक शब्दों को ईश्वर विषयक सप्रमाण सिद्ध करते हुए अनेक शङ्काओं का युक्ति युक्त समाधान भी किया है। निस्सन्देह यह पुस्तिका **वैदिक साहित्य की अनूठी शोभा** सिद्ध होगी। हम चाहते हैं कि इसी शैली पर शेष नियमों की अविलम्ब व्याख्या हो जानी चाहिए। यह पुस्तक सर्वथा उपादेय है।" —आ

"बडी ही तर्क पूर्ण एवं सुन्दर व्याख्या है। प्रत्येक नियम पर ऐसी ही सुन्दर व्याख्या की जाए तो यह एक लोकोपयोगी साहित्य होगा।"

—(आचार्य) नरदेव शास्त्री (वेदतीर्थ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ओ३म्

भूमिका

☆

पाठकों के सन्मुख 'सिद्धान्तशास्त्री,' 'साहित्यालङ्कार' श्री. पंडित शिवपूजनसिंह कुशवाहा 'पथिक' की यह पुस्तक महर्षिदयानन्दजी की पुण्यस्मृति में रुन्द्रग्रन्थमाला के चतुर्थ पुष्प के रूपमें प्रस्तुत करते हुए हमें आनन्द होता है।

स्वर्गीय महात्मा आत्मारामजी (अमृतसरी) हमें प्रायः कहा करते कि जो व्यक्ति वेदों का स्वाध्याय करके महर्षि के मार्ग का अनुसरण करके वेदमंत्रों के अर्थ महर्षि प्रदर्शित आदेशानुसार करता हो उसको सदा उत्तेजना देनी चाहिए। श्री पंडित शिवपूजनसिंहजी की कृतियों का प्रकाशन इसी सदुद्देश्य की पूर्ति को किन्हीं अंशों में पूर्ण हम कर सकेंगे। इसी सद्भावनासे प्रेरित होकर किसी प्रकार का पूर्व परिचय न होते हुए भी और उनके सरल साधु स्वभाव से प्रेरित होकर ही हमने उनकी पुस्तकों का प्रकाशन केवल वैदिक साहित्य की महर्षि दयानन्दजी के सिद्धान्तानुसार वृद्धि के सदुद्देश्य को लक्ष्य रखकर ही उनकी इच्छानुसारही प्रकाशित करना प्रारंभ कर दिया है।

आर्य जगत् में वैदिक स्वाध्यायशील और आर्य सिद्धान्तों को बराबर समझकर उनका समर्थन करनेवालों में निःस्वार्थ भावसे अपने समय को पं. शिवपूजनसिंहजी दे रहे हैं और इससे अवश्यही भविष्य की आर्यप्रजा को विशेष लाभ होगा। आजकल आर्य समाज में इस प्रकार लेख लिखनेवालों की संख्या बहुत न्यून है। श्री. पं. शिवपूजनसिंहजीने बडे परिश्रम से वैदिक साहित्य को उच्चतम कोटिपर रखने में अनेकों लेख लिखे हैं। आर्य पत्रों की संख्या पहले ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न्यून है और उनको भी सब आर्य खूब पढते हों यह भी नहीं फिर भी आप पंडितजीके लेख आर्य, दयानन्द-सन्देश सार्वदेशिक, वेद-वाणी, वैदिकधर्म्म, गुरुकुल-पत्रिका इत्यादि पत्रों में प्रायः पाते हैं। जिस प्रकार पूज्य श्री आत्मारामजी प्रति दिन किसी न किसी पत्र को किसी वैदिक सिद्धान्त के विरुद्ध किसी पत्र में कुछ छपा होता तो उसका उत्तर पहले लिख देते फिर दूसरा काम करते वैसेही यह हमारे पंडित शिवपूजनसिंह जी के भी लेख आप सैद्धान्तिक चर्चा युक्त विशेष पाते हैं।

इनकी 'महर्षि दयानन्दजी कृत वेदभाष्यानुशीलन' इस पुस्तक में भी वैदिक सिद्धान्तों का महर्षि दयानन्द के आदेशानुसार प्रतिपादन और मंडन आप पांएगें।

यदि आर्य एवम् वैदिक साहित्य प्रेमी जनता इनके ग्रन्थों को अपनाएगी तो भविष्य में अनेक ग्रन्थ प्रकाशित हो सकेंगें यदि सहकार न मिला तो देश का दुर्भाग्य ही समझना होगा अभी उन के पास कई बडे बडे सैद्धान्तिक ग्रन्थ लिखे हुए तैयार हैं; परन्तु अभीतक कोई ऐसे व्यक्ति नहीं मिले हैं जो इनको योग्य पारिश्रमिक तो क्या कुछ भी पारिश्रमिक देकर भी उन को प्रकाशित करने का कार्य ले सकें।

यदि आपको वास्तव में यह लगता है कि यह ग्रन्थ जो रुद्र-ग्रन्थमाला कें अबतक प्रकाशित हुए हैं बे वैदिक, साहित्य की शोभा हैं, आवश्यक हैं तो केवल प्रशंसा करके नहीं, वरन् सक्रिय इस ग्रन्थमाला को फूलने फलने में सहायक हों यही निवेदन है।

पाठकों के सन्मुख पं० जी की चतुर्थ कृति प्रस्तुत है, जो कि प्रत्येक आर्य संस्था, गुरुकुल, कन्या विद्यालय इन में उच्च श्रेणियों में पाठ्य पुस्तक के रूप में एवम् वैदिक धर्म की परीक्षाओं के लिए अतीव उपयोगी सिद्ध होगी।

शान्तिप्रिय आत्मारामजी (अमृतसरी)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ओ३म्

महर्षि दयानन्दजी कृत वेदभाष्यानुशीलन

अखिल विश्व के प्रायः विद्वान् यह मानते हैं कि वेद ईश्वरीय ज्ञान है। वेदों* में क्या क्या वर्णन है इसको जानने के लिये भाष्यों का आश्रय लेना पड़ता है, परन्तु अब तक जितने वेद भाष्य उपलब्ध होते हैं, उनमें परस्पर अत्यन्त मतभेद है। साधारण जनता उन भाष्यों को पढ़कर उलझन में पड़ जाती है और उनके लिये यह निर्णय करना दुष्कर हो जाता है कि कौन सा भाष्य सही है। प्राचीन काल में ऋषियों ने वेद भाष्य नहीं किया इसका तात्पर्य यह नहीं कि वे भाष्य नहीं कर सकते थे, परन्तु उन्हें वेद भाष्य करना अभीष्ट नहीं था। इसका मुख्य कारण यह है कि वेद " सर्वज्ञानमयो हि सः " सम्पूर्ण ज्ञान का भण्डार है, वेदमें सब सत्य विद्याएँ हैं, यह ऋषियों की निश्चित धारणा थी। किसी भी व्यक्ति को सम्पूर्ण विद्याओं का ज्ञान नहीं हो सकता। जब एक व्यक्ति चाहे वह ऋषि हो या मुनि, आचार्य या महान् विद्वान्, सब विषयों का ज्ञाता कदापि नहीं हो सकता, तो भला वह सम्पूर्ण वेद–भाष्य कैसे कर सकता है। इसीलिये ऋषि मुनि वेदों के

---

* देखो मासिक " क्षात्रधर्म सन्देश " जयपुर वर्ष ३, फरवरी १९४४ ई० अङ्क ५, पृष्ठ १० से १३, अङ्क ३, ४, ५, ६, ७ में प्रकाशित मेरा "पाश्चात्योंकी दृष्टिमें वेद अपौरुषेय हैं" शीर्षक लेख–लेखक।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्पूर्ण भाष्य न कर गये। किन्तु पठन पाठन के लिये, अर्थ करने की परिपाटी बताने के लिए और मन्त्रों में श्रम करने के लिये निरुक्त जैसे ग्रन्थ बना लिये गये थे। शतपथ, गोपथ, ऐतरेयादि जितने ब्राह्मण ग्रन्थ हैं सब वेदों के व्याख्यान ही हैं।

कहते हैं कि वेदभाष्य करने का सबसे प्रथम आरम्भ रावण ने किया। † उसके बाद पौराणिक काल में आचार्य उब्बट, महीधर, सायण प्रभृति ने वेदों पर भाष्य किए। श्री सायणाचार्य के पूर्व उद्गीथ, हरिस्वामी, उब्बट, वररुचि, भट्टभास्कर, वेङ्कटमाधव, आत्मानन्द, आनन्दतीर्थ, शत्रुघ्नाचार्य, गुणविष्णु, माधव और भरतस्वामी, देवपाल, प्रभृति विद्वानों ने भी वेदों पर भाष्य किये। * पाश्चात्य पण्डितों में मैकडोनल्ड, फिलिप, मोनियर विलियम, प्रो० मैक्समूलर, ओल्डेनबर्ग, सर विलियम जोन्स, ब्लूमफील्ड, गोल्डस्टकर, आफ्रेक्ट, ग्रिफिथ, वेबर, विटनी, वोटलिंग आदि ने भी वैदिक साहित्य पर बहुत कुछ लिखा है। परन्तु इन विद्वानों के ग्रंथों में वेदों की आत्मा का विकास नहीं हुआ है। पौराणिक भाष्यकार तो याज्ञिकवाद, देवतावाद, ऐतिहासिकवाद आदि वादों की बाधाओं में जकड़ गये हैं। पाश्चात्य विद्वानों के भाष्य अक्षरशः अनुवाद मात्र हैं। यद्यपि ये सायणाचार्य जी के पद-चिन्हों पर चलते हैं, परन्तु विकासवाद § की रट लगाकर वेदों के वास्तविक तात्पर्य से दूर हो गये हैं।

---

† "वैदिक सम्पत्ति" द्वितीय संस्करण पृष्ठ ५८३।

* वेद भाष्यकारों के विषय में अत्यधिक जानने के लिये द्रष्टव्य ग्रन्थ, रिसर्चस्कालर पं० भगवद्दत्तजी बी० ए० कृत "वैदिक वाङ्मय का इतिहास" द्वितीय भाग। —लेखक

§ विकासवाद के खण्डन के लिये देखो "वैदिक सम्पत्ति" द्वितीय संस्करण, पृष्ठ १६६ से १७४ तक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आजकल एक दो नहीं सैकड़ों पुरुष वेदों पर महाप्रहार कर गए हैं तथा कर रहे हैं परन्तु इनका समाधान कहीं नहीं होता। विद्यावारिधि पं० ज्वालाप्रसाद मिश्र का "मिश्रभाष्य" महीधर का अनुवादमात्र है। महीधर स्वयं वाममार्गी और काशीवासी था ×।

श्रीयुत राजेन्द्रलाल मित्र ने वेदों और शास्त्रों का जैसा उपहास किया, वैसा प्रायः कोई न कर सकेगा। * इसी कारण इनका नाम युरोप तक हुआ। पाश्चात्य पंडितों ने अपनी पुष्टि में इनको साक्षी बनाया है। महाशय भाण्डारकर भी इसी कक्षा में हैं। श्री रमेशचन्द्र दत्त ने ऋग्वेद का अनुवाद बंग भाषा में किया है। इन्होंने भी वेदों को दूषण देने में कोई कमी नहीं की। कृष्णलाल भट्टाचार्य, शिवनाथ शास्त्री, रमानाथ सरस्वती, हरप्रसाद शास्त्री आदि महानुभावों ने वेदों पर महाक्रूर दृष्टिपात किया है। इन्होंने वेदों को समझने में कोई परिश्रम नहीं किया। ये सब युरोपीय विद्वानों के शिष्यमात्र हैं।

ब्राह्मण ग्रन्थकार, पौराणिक भाष्यकार और योरोपीय भाष्यकारों के अतिरिक्त आधुनिक समय में वेदों पर युगपरिवर्तनकारी कदम उठाने वालों में सबसे प्रमुख नाम तेजस्वी ब्रह्मवर्चसी, महासमीक्षक, बाल-ब्रह्मचारी, वाग्मी, योगिराज, **महर्षि दयानन्दजी** का है। प्रस्तुत लेख में हमें महर्षि के वेदभाष्य पर ऊहापोह से अनुशीलन कर यह प्रदर्शित करना है कि इनकी वेदभाष्य शैली अपूर्व है और नैरुक्त प्रक्रिया के अनुकूल है।

यास्काचार्य वेदार्थ के लिये निम्न साधन निर्दिष्ट करते हैं:—

"अयं मन्त्रार्थचिन्ताभ्यूहोऽभ्यूढः। अपिश्रुतितोऽपि तर्कतः न

× देखो "वैदिक वाङ्मय का इतिहास" द्वितीयभाग।

* देखो श्रीराजेन्द्रलाल मित्रकृत "Indo Aryans".

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तु पृथक्त्वेन मन्त्रा निर्वक्तव्याः प्रकरणश एव तु निर्वक्तव्याः । न ह्येषु प्रत्यक्षमस्त्यनृषेरतपसो वा, पारोवर्य्यवित्सु तु खलु वेदितृषु भूयोविद्यः प्रशस्यो भवति" । ‡

अर्थात्—यह शास्त्र (निरुक्त) मन्त्रों के अर्थों के परिज्ञान के लिये उत्तम साधन है। मन्त्रों के अर्थ करने के लिये श्रुति के प्रमाणों को लेकर और वेदों से अप्रतिकूल तर्क के द्वारा प्रकरण के अनुसार मनन करना चाहिये। मन्त्रों को अलग अलग लेकर उनका स्वतन्त्र अर्थ करना अनुचित है क्योंकि मन्त्रों के विषय गहन होते हैं। अतः जो ऋषि और तपस्वी नहीं हैं वे मन्त्रार्थ का साक्षात्कार नहीं कर सकते। साधारण लोगों में बहुश्रुत की ही पूछ होती है।

श्री वेङ्कटमाधव भी कहते हैं :—

" संहितायास्तुरीयांशं विजानन्त्यधुनातनाः ॥
तस्मान्नाल्पश्रुतैर्मन्दैः कार्यो वेदार्थनिर्णयः ॥
शाकल्यः पाणिनिर्यास्क इत्यृगर्थ परास्त्रयः ॥
यथाशक्त्यनुधावन्ति न सर्वं कथयन्त्यमी " ॥ *

अर्थात्—आज कल के विद्वान् संहिता का चतुर्थांश जानते हैं। इस लिए अल्पश्रुतों को वेदार्थ का निर्णय नहीं करना चाहिए। शाकल्य पाणिनि और यास्क ये ऋग्वेद के अर्थों के ज्ञाता हैं, परन्तु ये भी यथाशक्ति अर्थ का प्रतिपादन करते हैं सब नहीं कहते। महर्षि दयानन्दजी के भाष्य में ही आपको विशेषता मिलेगी कि उन्होंने वेद के अर्थ को संकुचित नहीं किया, अपितु आप्त ऋषि-मुनियों की शैली के अनुसार व्यापक अर्थों का निर्देश अपने संस्कृतपदार्थ में किया है।

---

‡ निरुक्त १३।१२

* देखो " ऋग्भाष्यानुक्रमणी " पृष्ठ ७४,७७ ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऋषि के भाष्यग्रन्थः—ऋषि का सम्पूर्ण भाष्य यजुर्वेद पर ही मिलता है। ऋग्वेद पर सातवें मण्डल ६१ वें सूक्त के दूसरे मन्त्र से आगे किन्हीं अपरिहार्य कारणों से भाष्य नहीं कर सके हैं। अतः वर्तमान समय में ऋषि के भाष्य यजुर्वेद पर तथा आधे से अधिक ऋग्वेद पर ही उपलब्ध होते हैं। इनकी भाष्य शैली का परिचय इन्हीं भाष्यों से भी हो जाता है।

महर्षि दयानन्दजी ने ऋग्वेद भाष्य का प्रारंभ संवत् १९३४ वि० मार्गशीर्ष शुक्लपक्ष की छठी को किया था। इस विषय में ऋग्वेद भाष्य के आरम्भ में लिखा है:—

"विद्यानन्दं समवति चतुर्वेदसंस्तावनाया,
संपूर्य्येशं निगमनिलयं संप्रणम्याथ कुर्वे।
वेद त्र्यङ्के विधुयुतसरे मार्गशुक्लेऽङ्गभौमे,
ऋग्वेदस्याखिल गुण गुणिज्ञानदातुर्हि भाष्यम्॥"

अर्थात्—जो चारों वेदों की भूमिका विद्यानन्द को देती है उसे पूरा कर भगवान् को प्रणाम कर संवत् १९३४ मार्ग शुक्ल ६ ठी मंगलवार के दिन ऋग्वेद-भाष्य का आरम्भ करना है।

इसके कुछ समय के अनन्तर विक्रमीय संवत् १९३४ के पौष सुदी १३ गुरुवार के दिन यजुर्वेद भाष्य का प्रारम्भ किया।

इस सम्बन्ध में भाष्यारंभ में निम्न श्लोक दिया गया है।

"चतुस्त्र्यङ्कैरङ्कैः रवनिसहितैर्विक्रमसरे
शुभे पौषे मासे सितदलभविश्वोन्मिततिथौ॥
गुरोर्वारे प्रातः प्रतिपदमतीष्टं सुविदुषां,
प्रमाणैर्निबद्धं शतपथनिरुक्तादिभिरपि॥"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विक्रमीय सं. १९३४ पौष सुदी गुरुवार त्रयोदश तिथि के दिन यजुर्वेदभाष्य का बनाना आरम्भ किया जाता है।

एवम् ऋग्वेदभाष्य के प्रारम्भ से लगभग एक मास पीछे ऋषि ने यजुर्वेदभाष्य निर्माण शुरू कर दिया था। इस भाष्य की समाप्ति के विषय में भाष्य-समाप्ति पर निम्न लेख दिया गया है।

मार्गशीर्ष कृष्णपक्ष १, शनिवार संवत् १९३७ में समाप्त किया। वैशाख शुक्ल ११ सं. १९४६ में छपकर समाप्त हुआ। एवं ऋग्वेद तथा यजुर्वेद का भाष्य ऋषि ने लगभग एक ही समय प्रारम्भ कर दिया था। उनमें यजुर्वेद का लगभग ५ वर्षों में पूरा कर लिया था। साथ ही साथ आधे से अधिक ऋग्वेद का भाष्य भी ऋषि निर्माण कर चुके थे।

वेद भाष्यों का मुद्रण तथा संशोधन ऋषि के परलोकवासी (संवत १९४० वि.) होने के पश्चात् भी होता रहा। ऋषि के भाष्य प्रारम्भ में मासिक अङ्कों में ही मुद्रित किए गये थे। उन के जीवनकाल में यजु० के ११ अध्याय और कुछेक मंत्र ही ५१ अङ्कों तक मुद्रित हुए थे, और ऋग्वेद प्रथम मण्डल ८९ सूक्त के पांचवें मंत्र तक ही उनमें प्रसिद्ध हो सके थे। इस प्रकार ऋषि के जीवनकाल में दोनों भाष्यों के लगभग पांचों हिस्से ही मुद्रित हो सके थे। यजुर्वेद का सम्पूर्ण मुद्रण तो ऋषि की मृत्यु के ६ वर्ष बाद वि० १९४६ में हुआ, और इससे १० वर्ष बाद लगभग १९५६ वि० में ऋग्वेद का पूर्ण प्रकाशन हुआ है।

इन भाष्यों का हिन्दी अनुवाद पं० भीमसेनजी तथा पं० ज्वाला-दत्तजी प्रभृति विद्वानों नें किया है। संस्कृत भाष्य के प्रकाशन, मुद्रण की देखरेख प्रायः पण्डितों ने की है। अतः ऋषि के भाष्यों में कहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कोई त्रुटि प्रतीत हो तो आश्चर्य नहीं करना चाहिये * परन्तु अत्यन्त हर्ष के साथ लिखना पड़ता है कि इधर आर्य विद्वानों का ध्यान आकर्षित हुआ है। महर्षि दयानन्दजी के अनन्य भक्त, वैयाकरण शिरोमणि विद्वद्वरेण्य पं० ब्रह्मदत्तजी जिज्ञासु प्रयत्न कर रहे हैं और यजुर्वेद भाष्य १० अध्याय तक विशेष टिप्पणियों सहित अक्टूबर १९४५ में प्रकाशित हो चुका है। संस्कृत भाष्य में ऋषि ने पदों का अर्थ देने में अपनी अनुपम योग्यता का परिचय दिया है। ऊहापोह से दृष्टिपात करने से प्रतीत होता है कि यह भाष्य ब्राह्मण, निरुक्त तथा उपनिषत् की आर्ष शैली से सुसङ्गत तथा अनुकूल है।

---

* स्वामीजी का पत्र......" और समर्थदान से लिखा है कि ज्वालादत्त नई भाषा बनाता है। यदि वह हमारे संस्कृत और अभिप्राय के अनुकूल हो तो ठीक है नहीं तो जो पोपलीला की भाषा बना कर कहीं छपवा दे और हम को मालूम नहीं, पश्चात् प्रसिद्ध होने से कोलाहल होगा तो क्या होगा हां, अब तक तो उसने कुछ नहीं किया परन्तु सम्भव है कुछ गड़बड़ करे तो हो सकता है। इस लिए जो कुछ वह बनावे उसपर समर्थदान देखलो। जैसा कि अब भाष्य में एक गोलमाल शब्द (देवता) लिख दिया था। सो यह हमारे दृष्टिगोचर होने से शुद्ध हो गई। यदि वहां ऐसी छप गई तो बड़ी हानि की संभावना है। इस लिए ऐसा न होना चाहिये।"

मि० आ० व० ९
शुक्रवार सं १९४०
जोधपुर (मारवाड) } दयानन्द सरस्वती

[मासिक " सार्वदेशिक " देहली, वर्ष ११, नवम्बर १९३७ ई० अङ्क ९, पृष्ठ ३७८]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऋषि स्वयं अपने भाष्य के विषय में लिखते हैं:—

"परन्त्वेतैर्मन्त्रैर्यत्र यत्राग्निहोत्राद्यश्वमेधान्ते यद्यत् कर्त्तव्यं तत्तदत्र विस्तरतो न वर्णयिष्यते। कुतः? कर्मकाण्डानुष्ठानस्यैतरेय शतपथ पूर्व मीमांसा श्रौतसूत्रादिषु यथार्थ विनियोजितत्वात्।....तथैवोपासनाकाण्ड-स्यापि प्रकरणशब्दानुसारतो हि प्रकाशः करिष्यते। एवमेव ज्ञानकाण्ड-स्यापि।" †

अर्थात्-ऋषि की प्रतिज्ञा है कि उनके भाष्य में ज्ञान, कर्म, उपासनाकाण्ड का विचार नहीं किया जायगा, क्योंकि दर्शन, उपनिषद् तथा ब्राह्मण ग्रन्थों में इनका विवेचन किया गया है, अतः भाष्य में केवल अर्थ ही दिये जायेंगे।

इससे स्पष्ट है कि ऋषि के भाष्यों में अन्वय पूर्वक अर्थ का ही प्रयोग है। अन्य भाष्यों की तरह मंत्रगत भावों की व्याख्या नहीं है। इसका कारण पाठकों की मननशक्ति तथा विचार स्वातंत्र्य की रक्षा करना ही है।

महर्षि दयानन्दजी की असाधारण योग्यता व मौलिकता का परिचय "ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका" ‡ से हो जाता है। इनकी शैली का रहस्य इस ग्रन्थ की पंक्ति पंक्ति में प्रतिभासित होता है। जिस विषय का विशेष प्रतिपादन भूमिका में किया है उसी को भाष्य में फैलाया गया है। भूमिका में ५७ विषयों पर विवेचना की गई है।

---

† मासिक "सार्वदेशिक" देहली वर्ष ११, नवम्बर १९३७ ई० अङ्क ९, पृष्ठ ३८०

‡ पं० सुखदेव विद्यावाचस्पति कृत विशेष टिप्पणी सहित ऋ० भा० भूमिका श्रीगोविन्दराम हासानन्द, वैदिक पुस्तकालय, नई सडक देहली ने प्रकाशित किया है —लेखक।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पाश्चात्य विद्वान् प्रो० मैक्समूलर भी इसकी मुक्तकण्ठ से प्रशंसा करते हुए लिखते हैं:—

"We may divide the whole of Sanskrit literature beginning with the Rigveda, and ending with Dayanand's introduction to his edition of Rigveda, his by no means uninteresting Rigveda Bhumika in two great periods." *

अर्थात्-संस्कृत साहित्य का प्रारम्भ ऋग्वेद से होता है और समाप्ति दयानन्द जी की भाष्य भूमिका में यह बहुत मनोरंजक है।

ऋषि-भाष्य की अपूर्वता:—(क) इसमें लौकिक और वैदिक शब्दों के भेद को ध्यान में रखकर यास्क, पाणिनि, पतञ्जलि आदि ऋषि-मुनियों के आधार पर वेद के शब्दों के लिये सम्पूर्ण वैदिक नियमों का आश्रयण किया गया है।

सबसे प्रथम वैदिक भाषा-सम्बन्धी कठिनता है। यह तो प्रायः सभी स्वीकार करते हैं वैदिक भाषा यौगिक होने से प्रवाही है, भाव प्रधान है, तथा नाम और आख्यात के रूपों से धनी है, लेकिन आज जहां इस भाषा ज्ञान के साधन व्याकरण (Vedic Grammar) और कोष आदि ग्रन्थ हमें पर्याप्त रूप में उपलब्ध नहीं होते वहाँ पर इससे भी बढ़कर एक और कठिनता है। वह कठिनता वैदिक संस्कृत और सामान्य संस्कृत में भेद न करने से उत्पन्न होती है। दोनों प्रकार की संस्कृत में प्रचुर समानता है और भेद भी। वेद का अर्थ करते हुए यदि इस सत्य को भुला दिया जाय तो उनके अनर्थ

* "India, What Can it Teach Us" Lecture III, "भूमिका प्रकाशः" पृष्ठ १४८–१४९।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उत्पन्न हो जाते हैं ‡ इसलिये केवल लौकिक संस्कृत के ज्ञान के आधार पर ही वेद का अर्थ करना सर्वथा अनुचित है। तुलनात्मक भाषा-विज्ञान की दृष्टि से तो वैदिक भाषा के समझने में साधारण संस्कृत (Classical Sanskrit) संभवता उतनी सहायक नहीं है जितनी की जिन्दावस्ता की ज़न्दभाषा। भाषा-विज्ञान की दृष्टि से सम्भवतः लौकिक सस्कृत का वैदिक भाषा से उतना साम्य तथा सामीप्य नहीं है जितना ज़न्द भाषा का। *

‡ उदाहरण के लिये देखिये—"अतिसृष्टो अपां वृषभोतिसृष्टा अग्नयो दिव्याः" (अथर्व० १६।१।१) विटनी साहब का अर्थ—"Let go the bull of the waters. Let go the heavenly fires." ग्रिफ़िथ साहब का अर्थ "The bull of the waters hath been let go. The heavenly fires have been let go." अर्थात्—जलों का बैल छोड़ दिया जाय और छोड दी जायँ आसमान की अग्नियां।" यह कैसा अर्थ है? जलों के बैलों को छोड़ दो और आसमान की आगों को छोड़ दो। क्या इनमें परस्पर कोई सम्बन्ध जुड़ता है। जलों का बैल कौन? आकाश की अग्नियां कैसी! विटनी और ग्रिफिथ महोदय के मस्तिष्क की बलिहारी है। मन्त्रद्रष्टा ऋषि की दृष्टि में वैदिक शब्द प्रवाही एवं यौगिक होने से "वृषभ" शब्द का अर्थ "वर्षणार्थक" "वृष्" धातु से बरसाने वाला होता है। सबसे पूर्व मन्त्रगत "वृषभ" शब्द का यौगिक अर्थ करने से मन्त्र का रहस्य खुल जाता है। प्रकरणानुसार मन्त्र का वास्तविक अर्थ हुआः—"वीर्यरूप जलों को बरसाने वाला (व्यभिचारी काम) मैंने छोड दिया। और छोड़ दी है अप्राकृतिक व इन्द्रिय सम्बन्धी कामाग्नियां।"—लेखक।

* देखो Haug (हाग) कृत "Essays on the Sacred Language, Writings and Religion of the Parsis." P. P. 67-70.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वैदिक (Vedic) संस्कृत और लौकिक (Classical) संस्कृत का भेद देखना उचित है। इस विषय में वी० एस्० घाटे (V. S. Ghate) की "Lectures on Rigveda" ऋग्वेद पर व्याख्यान × पुस्तक की भूमिका का निम्न अवतरण ध्यान देने योग्य है:–

"Though the dialect of the Veda or more particularly the Rigveda is essentially Sanskrit, still it differs from the latter in many considerable respects, so much so that to a student of Classical Sanskrit pure and simple, the Vedic language would be almost Greek and Latin. The Vedic Sanskrit, if I may so call it, is much simple, more regu ar and less artificial than the classical Sanskrit. The forms of declension and conjugation are more regular in character though more varied at the same time. Sandhis are simple and far more intelligible. The infinitive mood, for instance has not less than six forms in the Veda, where as in latter Sanskrit, we have only one form..........."

इस अवतरण का भाव यह है कि वैदिक संस्कृत, लौकिक संस्कृत की अपेक्षा अधिक सरल नियमित तथा स्वाभाविक है Delcension विभक्ति तथा Conjugation (रूपकरण) के स्वरूप वैदिक संस्कृत में अधिक नियत हैं, वैदिक भाषा की सन्धियां सरल तथा सुस्पष्ट हैं, वेद में Infinitive mood के ६ रूप हैं जहां लौकिक संस्कृत में

× देखो-मासिक "क्षात्रधर्म संदेश" वर्ष ३, सन् १९४४ ई० मई अङ्क-५, पृष्ठ कालम दो की पाद टिप्पणी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

केवल एक है। कहने का तात्पर्य्य यह है कि लौकिक संस्कृत तथा वैदिक संस्कृत में पर्याप्त भेद है।

महर्षि दयानन्दजी ने वैदिक व्याकरण का अपने भाष्य में बहुत ही सहारा लिया है। महीधर, उव्वट प्रभृति पौराणिक भाष्यकारों ने उसका बहुत कम सहारा लिया है अधिकांश लौकिक संस्कृत के व्याकरण का सहारा लिया है।

वैदिक और लौकिक संस्कृत कोष भी भिन्न भिन्न हैं।

वैदिक संस्कृत का कोष निघण्टु है जिनकी टीका निरुक्त नाम से प्रसिद्ध है और लौकिक संस्कृत का कोष, अमर कोषादि हैं। वेद वैदिक संस्कृत में है इसलिए वेद का अर्थ वैदिक कोष के अनुसार उचित होगा। लौकिक संस्कृत कोष से यदि अर्थ किया जावेगा तो वह अशुद्ध होगा।

इसका एक उदाहरण देखिये—यजु० १६।२८ का पहला टुकड़ा "नमः श्वभ्यः" है। इसका श्री महीधराचार्य अर्थ करते हैं—"श्वानः कुक्कुरास्तद्रूपेभ्यो नमः इति नमस्कार मन्त्राः" अर्थात् कुत्तारूप जो रुद्र भगवान् हैं उसको नमस्कार है। वास्तव में इसका शब्दार्थ महीधर के लौकिक कोषानुसार "कुत्तों को नमस्कार हो" यह था। महीधर मन में सोचने लगे होंगे कि "कुत्तों को नमस्कार करना ठीक नहीं" इस कारण अपने आप 'कुत्तों को रुद्र का रूप गढ़ लिया जो मन्त्र में कहीं नहीं और अर्थ किया 'कुत्ता रूपी रुद्र को नमस्कार हो।"

इस मन्त्र के टुकड़े का अर्थ महर्षि दयानन्द जी अपने भाष्य में करते हैं :—

"लोग (श्वभ्यः) कुत्तों को (नमः) अन्न देवें।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महीधर ने लौकिक कोष अमरादि का सहारा लिया है उनमें 'नम': के अर्थ केवल ' नमस्कार ' के हैं; अन्न के नहीं। प्रत्युत महर्षि दयानन्द जी ने निघण्टु का सहारा लिया उसमें ' नमः ' के अर्थ हैं:—" आयु ब्रह्म, वर्चः, यशः, अन्नम् " (निरुक्त ३।९*)

(ख) ऋषि ने यौगिक अर्थ करने की प्रणाली पर विशेष बल दिया है। यह सिद्धान्त निरुक्तानुकूल है।

आख्यात या नाम जिनसे कि त्यय जोड़ा जाता है, वैयाकरण उसे ' प्रकृति ' कहा करते हैं।

जो शब्द प्रकृति और प्रत्यय की उपेक्षा करके केवल सामुदायिक शक्ति से अपने वाच्य पदार्थ को सूचित करता है, उसे रूढ़ कहते हैं।

जो शब्द प्रकृति और प्रत्यय दोनों की उपेक्षा करता हुआ समुदायशक्ति से वाच्यार्थ को बताता है उसे **योग रूढ़** कहते हैं।

दार्शनिक लोग शब्द का एक स्वभाव बताया करते हैं कि शब्द पहले पहल अपने वाच्य अर्थ को योगवृत्ति से कहता है फिर धीरे धीरे जब उसका वह अर्थ स्थिर सा हो जाता है तब दोनों वृत्तियों से योग रूढ़ कहा जाता है फिर चिरकाल के अनन्तर अतिप्रख्यात होने पर यौगवृत्ति को छोड़ कर केवल रूढ़वृत्ति से वाच्य अर्थ को सूचित करता है इस प्रकार जो शब्द अपने वाच्य अर्थ को योगवृत्ति से कहे वह

---

* मिलाओ " शतपथं ब्राह्मण " ६।३।१।१७ " अन्नं नमः " अन्न ही नमः है। (रुद्र के विषय में अत्यधिक जानने के लिये साप्ताहिक पत्र " आर्य्यमित्र " लखनऊ, वर्ष ५० बृहस्पतिवार १७ एप्रिल १९४७ ई०, अङ्क १५, पृष्ठ ५, ६, ११ में मेरा ' रुद्र का वास्तविक स्वरूप'' शीर्षक लेख देखिये —लेखक)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यौगिक, जो योग और रूढ़ दोनों वृत्तियों से कहे वह योगरूढ़ और जो कि योगरूढ़ मध्यम तथा यौगिक वृत्ति उत्तम तथा ज्येष्ठ केवल रूढ़वृत्ति से अपने अर्थ को बतावे उसे रूढ़ समझना चाहिए। तीनों वृत्तियों में रूढ़वृत्ति अन्तिम और निकृष्ट है अतः यह यौगिक वृत्ति ही विशेष आदरणीय है।

वैदिक दृष्टि में शब्द अपने वाच्य अर्थ को प्रकृति तथा प्रत्यय के आधार पर बताते हैं। ÷ इसलिए वैदिक शब्द यौगिक हैं।

महर्षि दयानन्द जी की वैदिक शब्दों को यौगिक समझने की शैली में यास्क प्रभृति आचार्यों के विचार भी देखने चाहिये।

"तत्र नामान्याख्यातजानीति शाकटायनो नैरुक्त समयश्च न सर्वाणीति गार्ग्यो वैयाकरणानाञ्चके" यह लिखते हुये यास्क ने शब्दों को यौगिक स्वीकार किया है। इसके अग्रिम लेख से यौगिक मत विरोधी गार्ग्य की सात युक्तियों का "तदेतन्नोपपद्यते" (निरुक्त १।१२) इस उपष्टम्भ से खण्डन करते हुये वे यौगिक मत ही पुष्ट करते हैं। उनयुक्तियों में यौगिक अर्थ पर किये जाने वाले सम्पूर्ण आक्षेपों का सुन्दर समाधान है। ¶

÷ देखोः "वैदिक धर्म" का वेदाङ्क वर्ष १९, जनवरी १९३८ ई०, अङ्क १ पृष्ठ १००

¶ देखो, शतपथ ब्रा० १४।८।४।१ में 'हृदय' की यौगिक व्याख्या, ऐतरेयब्रा० ६।५।६ गोपथब्रा० १।७ में अङ्गिरा, शतपथब्रा० १।८।२।७ में 'अनुयाज' शतपथब्रा० १०।१।१।१।५ में ग्रह, तै० २।०।९।१ में 'देव': शतपथब्रा० ३।९।४।२३ में यज्ञ इत्यादि शब्दों की यौगिक व्याख्या। यौगिक शब्द के विषय में अत्यधिक जानने के लिए पाठकों को श्री गुरुदत्त जी विद्यार्थी एम्० ए० की "Terminology of the Vedas" का "A yogic word is one that has a ...... आदि उद्धरण देखना चाहिये– लेखक।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ब्राह्मण ग्रन्थ भी वैदिक शब्दों को यौगिक ही मानते हैं।

वैदिक नाम-पदों को यौगिक न मानने पर क्या आपत्ति आती है इस सम्बन्ध में भी श्री द्विजदास दत्त एम्० ए० अपनी पुस्तक † में लिखते हैं:—

"How a word may deceive a Vedic student, and may be the mother of all kinds of legends, myths and superstitions, we will cite one example from the Rigveda. The word 'हस्ती' to day we all know, means an elephant And in that sense we meet with the word 'हस्ती' even in the Rigveda, "मृगा इव हस्तिनः खादथा वना" (1-64-7) (e Maruts or God in storms) " Like wild elephants, ye destroy the forests. " Again we have in the Rigveda 'अंशुं दुहन्ति हस्तिनो (3-36-7) If you took "हस्तिनः" here in the sense of 'elephants' and interpreted it. " The elephants cut up the Soma-Creeper into small pieces, and extracted the juice, you might accuse the Rishis of the wildest superstitions and perversities, such as believing elephants, like men, to have per-formed the soma sacrificel. More formidable still, the universal food giver (Indra) or God himself, is called in the Rigveda a 'Great Flephant' ' महाहस्ती, " आ तू न इन्द्र क्षुमन्तं चित्रं ग्राभं संगृभाय। महाहस्ती दक्षिणेन' (ऋ० ८।८१।१) If you interpreted 'महाहस्ती' as a " Great elephant "-"O thou great elephant, do thou take on thy powerful hands

† "Rigveda Unveiled" Page 130-131.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

somethings most acceptable, most beautiful, something that would call forth high praises, for giving to us, " you might accuse the Rishis of believing the elephant also to be an incarnation of God, and swell the number of animal Avatars, by adding to the fish and tortoise, elephant also! But go back to the root meaning of ' हस्ती ' as one "Having a hand, ' the elephant is a हस्ती, because of its hand like proboscis, the priest is as हस्ती, because of those human hand of his, and God is, " Great handed," because he is Almighty. It is on this " Paronomasia " or " श्लेषालङ्कार " in the Rigveda, that Swami Dayananda lays the greatest stress, for it was a necessary condition of the Rishis, very existence, and without realising it, you could not catch the Rishis' true meaning."¶

अर्थात्–" किस प्रकार एक शब्द वैदिक विद्यार्थी को धोखा दे सकता है और नाना कथा कहानियों तथा भ्रमात्मक विचारों का कारण बन सकता है इसका एक उदाहरण ऋग्वेद से उपस्थित किया जाता है। वर्तमान समय में 'हस्ती का अर्थ हाथी है–यह सभी जानते हैं और इस अर्थ में हस्ती शब्द का प्रयोग ऋग्वेद में भी हुआ है। यथाः–

'मृगा इव हस्तिनः खादथा वना' (१।६४।७) इत्यादि।

¶ तुलना करो, पं. यशःपाल सिद्धान्तालङ्कार कृत " वैदिक सिद्धान्तदर्पण " पुस्तक, प्रथम संस्करण, पृष्ठ ५६ से ६० तक तथा मासिक पत्र " वैदिक–विज्ञान " अजमेर, वर्ष १, सितम्बर १९३३ ई; संख्या १२, पृष्ठ ५३९–५४०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऋग्वेद में यह भी कहा है कि हस्ती सोम औषधि में से सोमरस निकालते हैं। यथा:–'अंशुं दुहन्ति हस्तिनः' (ऋ ३।३६।७)। यहां हस्ती का अर्थ यदि हाथी लिया तो मानना पड़ेगा कि इस मन्त्र का ऋषि इस भ्रम में था कि हाथी भी सोमयाग करते हैं। (हस्ती शब्द को यौगिक मानने पर हस्ती का अर्थ "हाथ वाले" ऋत्विग् लोग, जो अर्थ कि सोमयाग के सम्बन्ध में बहुत उपपन्न दिखाई देता है)। और देखिए वेद में इन्द्र को महाहस्ती कहा है। यथा—'आ तू न इन्द्र क्षुमन्तं चित्रं ग्राभं संगृभाय। महाहस्ती दक्षिणेन, (ऋ० ८।८१।१) यहां यदि महाहस्ती का अर्थ बड़ा हाथी किया जाय तो महान् अनर्थ होगा क्योंकि इससे यह बात सिद्ध होगी कि इस मन्त्र का ऋषि बड़े हाथी को भी देव का रूप मानता था, इस प्रकार पशु-अवतार नाना मानने पड़ेंगें।

अब हस्ती शब्द के यौगिक अर्थ की ओर चलिये इसका यौगिक अर्थ है 'हाथवाला'। हाथी हस्ती है चूंकि उसकी सूंड होती है जो कि उसे हाथ का काम देती है। ऋत्विक् हस्ती है, चूंकि उसके हाथ होते हैं। इन्द्र अर्थात् देव या परमात्मा महाहस्ती है चूंकि वह सर्वशक्तिमान् है;

इसी लिए महर्षि स्वामी दयानन्द ने वेदों म श्लेषालंकार की सत्ता पर अधिक बल दिया है, क्योंकि बिना इस कथन का गौरव समझे ऋषि का वास्तविक अभिप्राय समझा नहीं जा सकता। सायण * महीधर * उव्वट * ने भी अपने भाष्यों में शब्दों को यौगिक स्वीकार किया है।

* सायणः–इन्द्रम्=परमैश्वर्यापेक्षं देवं, वाणिज्यकर्त्तारम् (अथर्व० भाष्य ३।१५।१) ऋ० १।१०५।१७ में त्रितः' को एक ऋषि का नाम बतलाया है, परन्तु ऋ० १।१६३।२ में 'त्रितः' का अर्थ "पृथिव्यादिषु त्रिषु स्थानेषु वर्त्तमानः तीर्णतमोवावायुः किया गया है।

* ऋ० ८।८।१८ में 'प्रियमेधाः' का अर्थ एतत्संज्ञा ऋषयः' किया गया है पर ऋ० १०।७४।१ में 'प्रिययज्ञाः' का अर्थ किया गया है जो कि सूर्य रश्मियों का विशेषण है। इन्द्रः आत्मा (यजु० ।२०); सवितुः–परमश्वरस्य (यजु० १०।६)।

* पिता=पाता (यजु० २।११), इन्द्रः=यजमानः (यजु० ४।२७)।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अतएव महर्षि दयानन्दजी ने जो 'अग्नि, वायु, आदित्य, सविता, आदि से परमेश्वर, विद्वान्, राजा आदि अर्थ किये हैं वे यथार्थ हैं।

(ग) यह भाष्य त्रिविध प्रक्रिया (आध्यात्मिक=आत्मा, परमात्मा का निरूपक), आधिदैविक=प्रकृति के तत्वोंका प्रतिपादक, अधियज्ञ= यज्ञ विषयक) से युक्त है।

निरुक्त १।२० में "अर्थं वाचः पुष्पफलमाह। याज्ञदैवते पुष्पफले, देवताध्यात्मे वा" कहते हुये यास्क ने इसमें सम्पूर्ण वेदवाणी के अधियज्ञ, आधिदैविक और आध्यात्मिक अर्थ को वाणी का पुष्प और फल स्थानीय माना है।

निरुक्त के इस स्थल का यही तात्पर्य आज से १५०० वर्ष प्राचीन आचार्य स्कन्द स्वामी लिखते हैं:—"सर्व दर्शनेषु च सर्वमन्त्रा योजनीयाः कुतः ? स्वयमेव भाष्यकारेण सर्वमन्त्राणां त्रिप्रकारस्य विषयस्य प्रदर्शनाय "अर्थं वाचः पुष्प फलमाह' इति यज्ञादीनां पुष्पफलत्वेन प्रतिज्ञानात्"। (स्कन्द० निरुक्तटी० ७।५ भाग ३ पृष्ठ ३६।३७)

अर्थात्—सब मन्त्रों का (कुछ एक का नहीं) तीनों प्रक्रियाओं में अर्थ होता है, यह यास्क का सिद्धान्त है।

निरुक्त के टीकाकार दुर्ग भी तीनों प्रक्रियाओं में मन्त्रों के अर्थ मानते हैं:
आध्यात्माधिदैवताधियज्ञाभिधायिनां मन्त्राणामर्थाः परिज्ञायन्ते ॥"
(निरुक्त १।१८) "सोऽयमेवमाधिदैवतमधियज्ञं चोच्छिद्या ध्यात्ममेवाभिसम्पादयति ॥" (निरुक्त १।२०)

इन उपर्लिखित स्थलों के भाव यह हैं कि वेद मन्त्रों के अर्थ तीनों प्रक्रियाओं अध्यात्म, अधिदैव तथा अधियज्ञ में होते हैं।

श्री सायण के पूर्ववर्त्ती वेदभाष्यकार हरिस्वामी, भट्टभास्कर,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आत्मानन्द, आनन्दतीर्थ, जयतीर्थ, राघवेन्द्रयति, शत्रुघ्न, देवपाल भी त्रिविध प्रक्रिया को उत्कृष्ट मानते हैं।

त्रिविध प्रक्रिया के विषय में महर्षि दयानन्द जी के स्वसिद्धान्त :—

'अत्र वेदभाष्ये कर्मकाण्डस्य वर्णनं शब्दार्थतः करिष्यते परन्त्वेतै-र्वेदमन्त्रैः कर्मकाण्डविनियोजितैर्यत्राऽग्निहोत्राद्यश्वमेधान्ते यद्यत् कर्त्तव्यं तत्तदत्र विस्तरतो न वर्णयिष्यते। कुतः। कर्मकाण्डानुष्ठानस्यैतरेयशतपथ ब्राह्मणपूर्वमीमांसा श्रौतसूत्रादिषु यथार्थं विनियोजितत्वात्।... *

अर्थात्—पदार्थों में याज्ञिक अर्थों का निर्देशमात्र रहेगा। हम समस्त याज्ञिक अर्थ नहीं दर्शायेंगे। किसी भी मन्त्र के अर्थ करने में परमेश्वर का त्याग कदापि नहीं हो सकता। प्रत्येक मन्त्र का अर्थ परमेश्वरपरक भी होगा।

(घ) ऋषि-भाष्यानुकूल वेद में ऐतिहासिक स्थल नहीं। × वैदिक शब्दों के यौगिक प्रक्रिया के आधार पर ही अर्थ होते हैं।

(ङ) यह भाष्य प्रकरणानुकूल है।

---

* देखो "ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका" प्रतिज्ञाविषयः, द्वितीया-वृति पृष्ठ ४३० अजमेर संस्करण।

× वेद में किसी व्यक्ति विशेष का इतिहास गाथादि नहीं है। इसको अत्यधिक जानने के लिये पाठकों को पं० शिवशङ्कर शर्मा काव्य तीर्थ कृत "वैदिक इतिहासार्थ निर्णय"; पं० ब्रह्मदत्त जी जिज्ञासु कृत "निरुक्तकार और वेद में इतिहास" पं० प्रियरत्न जी आर्ष (अब स्वामी ब्रह्ममुनि)कृत "वेद में इतिहास नहीं" नामक महत्वपूर्ण ग्रन्थों को देखना चाहिये — लेखक।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वैदिक शब्दों के यौगिक मान लेने पर एक प्रश्न हो सकता है कि इस तरह से एक शब्द के अनेक अर्थ हो जाते हैं और शब्द का कोई भी निश्चित अर्थ प्रतीत नहीं होता है। इसका समाधान आचार्य यास्क के मतानुसार इस प्रकार है कि हमें केवल प्रकृति तथा प्रत्ययलभ्य अर्थ से ही सन्तुष्ट न रहना चाहिये, वरन् प्रकरण † तथा विशेषणों ¶ पर भी ध्यान करना चाहिये।

किसी विशेष पदार्थ या देवता का निर्णय यौगिकवृत्ति से कर लेना ही उचित नहीं और रूढ़ि अर्थों को मान लेना उचित है, परन्तु विशेषणों के आधार पर विशेष्य या देवता का स्वयं निर्णय करना चाहिये, साथ ही आगे पीछे के प्रकरण का भी ध्यान रखना चाहिये।

(च) इस भाष्य में देवता को मन्त्र का प्रतिपाद्य विषय माना है तथा इन्द्र: मित्र वरुणादि सब देवतावाची शब्द उसी एक महान् आत्मा परब्रह्म जगदीश की विभूतियों के वाचक हैं। जब ऐसा मानकर यौगिकवाद के आधार पर उनके अर्थ दर्शाये हैं। सर्वानुक्रमणी से भिन्न भी कहीं कहीं वाच्यार्थ को देवता मानकर मन्त्रो की व्याख्या की गई है।

" सर्वानुक्रमणी " २।५ में लिखा है:—" या तेनोच्यते सा देवता "। इसी पर षड्गुरु शिष्य कहता है—"तेन वाक्येन यत् प्रतिपाद्यं वस्तु सा देवता।" अर्थात् मन्त्र के प्रातिपाद्य विषय का नाम ही देवता है।

---

† देखो " परम लघु मंजूषा शब्द शक्ति विचार " प्रकरण १४ पृष्ठ पर तद् उक्तम् हरिणा..........

¶ देखो-"ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका" के भाष्य करण शङ्का समाधानादि प्रकरण......" तेन अत्रेन्द शब्दो विशेषणतया। अत्र खलु विशेष्योऽग्निः शब्द इन्द्रादीनां विशेषणानाम्......इत्यादि..."

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनादिष्ट देवता वाले मन्त्रों के देवता का निर्णय तो बिना तपोबल वा योगबल के द्वारा अर्थ जाने बिना हो ही कैसे सकता है। इसलिये 'ऋग्वेद के भाष्यकार वेङ्कटमाधव अपनी देवतानुक्रमणी' पृष्ठ ५५ में लिखते हैं:—

"देवतातत्त्वविज्ञानं महता तपसा भवेत्।
शक्य ते किमस्माभिर्याथातथ्येन भाषितुम्॥"

पुनः—"न प्रत्यक्षमनृषेरस्ति मन्त्रम्। योगेन दाक्ष्येण दमेन बुद्ध्या बाहुश्रुत्येन तपासानियोगैः उपास्यास्ताः कृत्स्नशो देवताः"। (बृह० ८।१२९,१३०)

अर्थात्—मन्त्र अनृषि को प्रत्यक्ष नहीं होते, योग, दम (इन्द्रिय निग्रह), व्यापक पाण्डित्य तथा तप आदि के द्वारा सम्पूर्ण देवताओं को जानने का यत्न करना चाहिये। *

ऋषि के पूर्व सायणादि भाष्यकार अग्नि, वायु आदि देवता वाचक शब्दों को अचिन्त्य, अज्ञेय, चेतनदेवों के वाचक मानते हैं जो कि अपने अपने मण्डल के अधिष्ठाता हैं। ऐसा ही अभिमानी देवता विषयक विचार कई वेदान्तियों का भी है।

परन्तु ऋषि शैली के अनुकूल अग्नि, इन्द्र, रुद्रादि देवताओं को

---

* देवता शब्द का 'देवो दानाद्वा, द्योतनाद्वा, दीपनाद्वा, द्युस्थानोभवतीति वा "यो देवः सा देवता" निरुक्त ७।४ के अनुसार देवता का जैसे परमात्मा अर्थ हो सकता है वैसे ही अन्य भौतिक अग्नि आदि भी। "मातृदेवो भव, पितृदेवोभव, आचार्यदेवो भव, अतिथिदेवोभव" (तैत्तिरीयोपनिषद् १।११) माता, पिता, आचार्य, अतिथि देवता हैं।

"विद्वांसा हि देवाः" (शतपथ ब्रा० ३।७।४।४) विद्वान् ही देवता हैं।

पुस्तकालय
गुरुकुल कांगड़ी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यौगिक दृष्टि से प्रकरण और विशेषणों के आधार पर देखने से वे शब्द अनेक पदार्थों के वाचक होते हुए भी एक परमात्मा के वाचक हैं। इस विषय में शास्त्रों की भी पूर्ण सम्मति है। यहाँ पर एक बात जान लेनी अत्यावश्यक है कि महर्षि की सम्मति में अग्नि, वायु आदि के ईश्वर से अतिरिक्त भी अर्थ होते हैं।

महाभाष्यकार कहते हैं:—"किंपुनरर्थस्य तत्त्वं देवा ज्ञातुमर्हन्ति।" (महाभाष्य अ० २)

इस पर कैय्यटभाष्यः—" देवा इति दिव्य दृशः, देवा इति पण्डिता इत्यर्थः।" पण्डितों को देवता कहते हैं।

एवं भिन्न भिन्न देवता भिन्न भिन्न व्युत्पत्तियों के आधार पर अनेक वस्तुओं के वाचक होते हैं। परन्तु साथ ही साथ एक परमात्मा के भी वाचक हैं जैसे :—

" तदेवाग्निस्तदादित्यः तद्वायुस्तदु चन्द्रमाः।
तदेव शुक्रं तद् ब्रह्म ता आपः स प्रजापतिः" ॥ यजु० अ० ३२-१*

इस में अग्नि आदि देवों को तत् शब्द वाच्य ब्रह्म के ही वाचक बताया गया है।

वेदों में तेतीस देवताओं × का वर्णन है; परन्तु सब के सब एक परम देव के ही अङ्गभूत हैं,

देवता शब्द विशेष पारिभाषिक † अर्थ भी रखता है। तब इसका

---

* ऋ० १।३४।११; ऋ. १।१३९।११; अथर्व. १०।७।२३; अथर्व. १०।७।२७; यजु. १४।३१; ऋ. ६।३५।१

× देवताओं के विषय में अत्यधिक जानने के लिये पाठकों " ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका " वेद विषय विचार प्रकरण देखना चाहिये

† देखो-यास्क दैवतकाण्ड में.... " यत्काम ऋषिर्यस्यां देवतायाम् आर्थपत्यमिच्छन् स्तुतिं प्रयुंक्ते तद्दैवतः स मन्त्रो भवति " (निरुक्त ७।१)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्थ मन्त्र का प्रतिपाद्य विषय होता है। वेदों के मन्त्रों के अग्न्यादि देवता प्रतिपाद्य विषय ही हैं, अतः अग्न्यादि रूप से मुख्यतः परमात्मा ही वेद का प्रतिपाद्य विषय है: अन्य सब गौण रूप से प्रतिपाद्य हैं।

ऋषिभाष्य में देवता अपने शुद्ध रूप में विराजमान हैं।

(छ) धातुओं के अनेकार्थत्व के सिद्धान्त को, जो सभी वैय्याकरणों का मुख्य सिद्धान्त है, जिसको प्रायः सब वेदभाष्यकारों ने अपने भाष्यों में माना है, उसके आधार पर महर्षि दयानन्द जी ने मन्त्रों के अर्थ किये हैं।

धातुओं की अनेकार्थता के विषय में प्रमाण :—

" महाभाष्यकार पतञ्जलि :—" बह्वर्था अपि धातवो भवन्ति ‡ कुमारिलभट्ट लिखते हैं :—" निगमनिरुक्तव्याकरणवशेन धातुतोऽर्थः कल्पयितव्यः " ¶ " निगमादि वशाच्चाद्य धातुतोऽर्थः प्रकल्पितः "*

" अनेकाऽर्था धातवः "×

" अनेकार्थत्वाद् धातूनां तुञ्जतिः प्रेरणे वर्त्तते " +

(ज) 'यज्ञ' आदिशब्दों से त्रिविध आध्यात्मिक-आधिदैविक-आधिभौतिक यज्ञों का अर्थ लिया गया है। केवल भौतिक यज्ञ को लेकर महर्षि दयानन्द जी का भाष्य समझना टेढ़ी खीर है।

यज्ञः शब्द की व्याख्या करते हुए यजुर्वेद अ० १ के भाष्यमें महर्षि दयानन्द जी लिखते हैं :—

---

‡ महाभाष्य अ० १।३।१

¶ तन्त्रवार्त्तिक पृष्ठ १५६।१५७

* वही पृष्ठ १५६।

× आत्मानन्द पृष्ठ ७।

+ जयतीर्थ पृष्ठ २७।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

" विद्याज्ञानधर्मानुष्ठानवृद्धानां देवानां विदुषामैहिकपारमार्थिकसुख-सम्पादनाय सत्करणं, सम्यके पदार्थ सम्मेलन विरोधज्ञान संगत्या शिल्प-विद्या प्रत्यक्षीकरणामिति यज्ञार्थ स्त्रिधा भवति "।

यह अर्थ " यज् देवपूजा, सङ्गतिकरण, दानेषु, इस धात्वर्थ के आधार के पर किया गया है। वैदिक और प्राचीन साहित्य में यज्ञ शब्द का ऐसे ही व्यापक अर्थ में प्रयोग है और प्रत्येक श्रेष्ठ कर्मका उसमें अन्तर्भाव हो सकता है।

" यज्ञोवै श्रेष्ठतमं कर्म " (शतपथ० १।७।१।५)

" यज्ञो हि श्रेष्ठतमं (तै० ३।२।१।४)

" यज्ञो वै महिमा " (शतपथ १६।३।१।१८)

पुरुषो वै यज्ञः (कौष० १७।७)

" यज्ञो वै भुवनम् " (तै० ३।३।७।५)

" यज्ञो वा ऋषिः ऋतस्य योनिः " (शतपथब्रा० १।३।४।१६)

इत्यादि वचनों से महर्षि दयानन्द जी के अर्थों की पुष्टि होती है। इन वाक्यों में लोकोपकारक सब श्रेष्ठकर्मों को 'यज्ञ' नाम से कहा गया है।

" अध्यापनं ब्रह्मयज्ञः " (मनुस्मृति ३।७०)

इसकी व्याख्या करते हुए श्री कुल्लूक भट्ट लिखते हैं :-"अध्यापन शब्देनाध्ययनमपि गृह्यते। जपोऽहुत इति वक्ष्यमाणत्वात्। अतोऽध्यापन-मध्ययनं च ब्रह्मयज्ञः।" इससे ऋषिकृत "अध्ययनाध्यापन" रूप अर्थ का स्पष्ट समर्थन होता है।

(झ) सब से बड़ी और अन्तिम विशेषता दयानन्द भाष्य की यह है कि उसमें नैरुक्तशैली के अनुसार संस्कृत पदार्थ मन्त्रगत पदों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के क्रम से रक्खा गया है और उसमें यत्र तत्र मन्त्रों के तीनों प्रकार के अर्थों को लक्ष्य में रख कर निर्वचन तथा अर्थ दर्शाया गया है, जो अन्वय में नहीं हो सकता थां। अन्वय को संस्कृत पदार्थ का एक अंश समझना चाहिये और इस संस्कृत अन्वय का ही भाषार्थ किया गया है, जो भाषा करने वालों से ठीक ठीक पूरा हो भी नहीं सका।

इस वेद भाष्य की इस विशेषता को न समझ कर कतिपय सज्जन घबडाने लगते हैं। इस प्रकार समझ लेने से फिर कोई कठिनाई नहीं रहती।

(ञ) वेद सर्व तन्त्र सिद्धान्त अर्थात् सार्वभौमिक नियमों का प्रतिपादन करता है यह बात इस भाष्य से स्पष्ट प्रकट होती है।

जो बातें सब के अनुकूल, सब में सत्य, जिनको सब सदा से मानते आये, मानते हैं और मानेंगे, जिनका कोई भी विरोधी न हो, जो प्राणिमात्र के हित कल्याण कारक हैं, ऐसे सर्व तन्त्र सर्वमान्य सिद्धान्त ही भूमण्डल में सुख और शान्ति के प्रतिपादक हो सकते हैं। वेद तो स्पष्ट कहता है :–

"मित्रस्य मा चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम्।

...मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे" (यजु० ३६।१८) 'यस्मिन्त्सर्वाणि भूतन्यात्मैवाभूद् विजानतः" अर्थात् प्राणिमात्र को मित्र की दृष्टि से देखो। [यजु० ४०–७]

अपनी आत्मा के सदृश सब प्राणियों को जानो !

ऐसी अवस्था में यदि कोई वेद का अर्थ इसके विरुद्ध करता है, तो कैसे माननीय हो सकता है। ईश्वर का ज्ञान वेद, फिर भी जाति जाति में, और देश देश में फूट डलवाने वाली बात कहे, यह कैसे हो सकता है?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीमहीधराचार्यका भाष्य और लीपापोतीः–

यह हम पहिले लिख चुके हैं कि श्री महीधराचार्य काशी निवासी वाममार्गी थे। इन्होंने वेद भाष्य में इतनी अश्लीलता प्रदर्शित की है कि उसे पढ़कर शायद किसी भी व्यक्ति को वेद पर श्रद्धा न रहे। इनके ही भाष्यों को देखकर तो जैन, बौद्ध, चार्वाकादि सम्प्रदायों की सृष्टि हुई, और चार्वाकों ने यहां तक कह दिया कि–

"त्रयो वेदस्य कर्त्तारो भण्डधूर्तनिशाचराः।
जर्फरी तुर्फरीत्यादि पण्डितानां वचः स्मृतम् ॥" *

अर्थात्–वेद के बनाने हारे भाण्ड, धूर्त और निशाचर अर्थात् राक्षस ये तीन 'जर्फरी', 'तुर्फरी' इत्यादि पण्डितों के धूर्ततायुक्त वचन हैं। अब श्री महीधराचार्य के कुछ अश्लील असङ्गत भाष्यों का नमूना देखिये।

"गणानां त्वा गणपतिँ हवामहे (यजु० २३।१९)

---

* 'सत्यार्थ-प्रकाश' द्वादश समुल्लास। इस पर महर्षि दयानन्दजी कहते हैं:–"जो चार्वाक आदि ने वेदादि सत्यशास्त्र देखे सुने वा पढ़े होते तो वेदों की निन्दा कभी न करते कि वेद भाण्ड, धूर्त्त और निशाचरवत् पुरुषों ने बनाये हैं ऐसा वचन कभी न निकालते, हां भाण्ड धूर्त निशाचरवत् महीधरादि टीकाकार हुए हैं, उनकी धूर्त्तता है वेदों की नहीं, परन्तु शोक है कि चारवाक, आभाणक, बौद्ध और जैनियों पर कि इन्होंने मूल चार वेदों की संहिताओं को भी न सुना न देखा और न किसी विद्वान् से पढ़ा इसलिए नष्ट-भ्रष्ट बुद्धि होकर ऊटपटांग वेदों की निन्दा करने लगे दुष्ट वाममार्गियों की प्रमाण शून्य कपोल कल्पित भ्रष्ट टीकाओं को देख कर वेद से विरोधी होकर अविद्यारूपी अगाध समुद्र में जा गिरे"।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसमें आपने यजमान पत्नी को घोड़े के पास सुलाया है और गर्भ धारण कराया है। महर्षि दयानन्दजी ने इस मन्त्र के ईश्वरार्थ का प्रतिपादन किया है। *

"ता उभौ चतुरः पदः सम्प्रसारयाव (यजु० २३।२०)

महीधर भाष्यः—यजमान की पत्नी घोड़े के लिंग को पकड़ कर आपही अपनी योनि में डाल देवे। †

"यकासकौ शकुन्तिकाहलगिति वञ्चति...(यजु० २३।२२)

महीधर भाष्यः—"यज्ञशाला में अध्वर्यु आदि ऋत्विजलोग कुमारी और स्त्रियों के साथ उपहासपूर्वक संवाद करते हैं। इस प्रकार से कि अङ्गुली से योनि दिखलाकर हंसते हैं।" ‡

माता च ते पिता च तेऽग्रं वृक्षस्य रोहतः....(यजु० २३।२४)

महीधर भाष्यः—अब ब्रह्मा हास करता हुआ यजमान की स्त्री से कहता है कि जब तरी माता और पिता पलंग के ऊपर चढ़के तेरे पिता ने मुष्टितुल्य लिङ्ग तेरी माता के भग में डाला तब तेरी उत्पत्ति हुई। §

"ऊर्ध्वमेनामुच्छ्रापयगिरौ भारं (यजु० २३।२६)

महीधर भाष्य—यथा अस्यै अस्या वावाताया मध्यमेधतां योनिप्रदेशो वृद्धिं यायात्....¶

"यदस्या अँहुभेद्याः कृधु......" (यजु० २३।२८)

---

* विस्तारपूर्वक सत्यार्थ जानने के लिए देखो—"ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका" भाष्यकरण शङ्का समाधानादि विषयः —लेखक।

† सत्यार्थ देखो, वही पृष्ठ ४१७-१८।

‡ सत्यार्थ देखो, वही पृष्ठ ४१६

§ सत्यार्थ देखो, वही पृष्ठ ४२१

¶ सत्यार्थ देखो, वही पृष्ठ ४२२

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महीधर भाष्यः—यत् यदा अस्याः परिवृक्तायाः कृधु ह्रस्वं स्थूलं च शिश्नमुपातसत्........×

"यद्देवासो ललामगुं प्र ाविष्टीमिनमाविषुः......" (यजु० २३।२९)

महीधर भाष्यः—(यत्) यदा (देवासः) देवा दीव्यन्ति क्रीड़न्तीति देवाः होत्रादयः ऋत्विजो (ललामगुं) लिङ्गं (प्रआविशुः) योनौ प्रवेशयन्ति, ललामेति सुखनाम, ललाम सुखं गच्छति......"❀

"यद्धरिणो यवमत्ति न पुष्टं बहु मन्यते...." (यजु० २३।३०)

महीधर भाष्यः—"क्षत्ता पालागलीमाह। शूद्रा शूद्रजातिः स्त्री, यदा अर्यजारा भवति...‡

"**उत्सक्थ्या अव गुदं धेहि**...(यजु० २३।२१)

महीधर भाष्यः—यजमानोऽश्वमभिमन्त्रयते। हे वृषन्! सेक्तः अश्व! उत् ऊर्ध्वे सक्थिनी उरू ययास्तस्या महिष्या, गुदमव गुदोपरि, रेतो धेहि वीर्यं धारय.......†

इन्हीं सब अर्थों को देख कर चारवाक लिखता है:—"अश्वस्यात्र हि शिश्नन्तु पत्नीग्राह्यं प्रकीर्तितम्। भण्डैस्तद्वत्परं चैव ग्राह्यजातं प्रकीर्तितं"। +

अर्थात्—देखो धूर्तों की रचना घोड़े के लिंग को स्त्री ग्रहण करे, उसके साथ समागम यजमान की स्त्री से कराना, कन्या से ठट्ठा आदि लिखना धूर्त्तों के बिना नहीं हो सकता।"

× सत्यार्थ देखो वही पृष्ठ ४२९, ४२३

❀ सत्यार्थ देखो वही पृष्ठ ४२५

‡ सत्यार्थ देखो वही पृष्ठ ४२३, ४२७

† सत्यार्थ देखो वही पृष्ठ ४२८

+ सत्यार्थ-प्रकाश, द्वादश समुल्लासः

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस पर महर्षि दयानन्दजी कहते हैं:—"भला विचारना चाहिये कि स्त्री से अश्व के लिंग का ग्रहण करा के उससे समागम कराना और यजमान की कन्या से हंसी-ठट्ठा आदि करना सिवाय वाममार्गी लोगों से अन्य मनुष्यों का काम नहीं है बिना इन महापापी वाममार्गियों के भ्रष्ट वेदार्थ से विपरीत, अशुद्ध व्याख्यान कौन करता ?" §

"यथेमां वाचं कल्याणीमावदानि जनेभ्यः। ब्रह्मराजन्याभ्यां शूद्राय चार्य्याय च स्वाय चारणाय" (यजु० २६।२)

महीधरभाष्यार्थ :—क्योंकि मैं ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य, शूद्र, मित्र, शत्रु, सब को दो, और खाओ ऐसी उत्तम वाणी कहता हूँ इसलिए मैं देवताओं का प्यारा बनूँ, दक्षिणा देने वालों का प्रिय बनूँ मेरी इच्छा पूर्ण हो।

महर्षि दयानन्द भाष्यार्थ :—यथेमां वाचं कल्याणी० इस मन्त्र का अभिप्राय यह है कि वेदों के पढ़ने पढ़ाने का अधिकार सब मनुष्यों को है और विद्वानों को उनके पढ़ाने का इसलिए ईश्वर आज्ञा देता है कि हे मनुष्य लोगो ! जिस प्रकार मैं तुम को चारों वेदों का उपदेश करता हूँ उसी प्रकार से तुम भी उनको पढ़ के सब मनुष्यों को पढ़ाया और सुनाया करो। क्योंकि यह चारों वेद सब की कल्याण करने वाली वाणी है। (तथा आवदानि जनेभ्यः) जैसे सब मनुष्यों के लिए मैं वेदों का उपदेश करता हूँ वैसे ही सदा तुम भी किया करो। वेदाधिकार जैसा ब्राह्मण वर्ण के लिए है वैसे ही क्षत्रिय, अर्य्य=वैश्य, शूद्र, पुत्र, भृत्य और अतिशूद्र के लिए भी बराबर है, क्योंकि वेद ईश्वर प्रकाशित है।

इन दोनों अर्थों में कौन संगत और कौन असंगत है इसका

---

§ Ibid.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विवेचन तो विज्ञ पाठक ही करें: तथापि यहां वैदिक रिसर्च स्कालर वेदज्ञों में प्रसिद्ध पं. सत्यव्रत जी सामश्रमीकी सम्मति उध्दृत की जाती है।

श्री सामश्रमी जी ने ऐतरेय ब्राह्मण की "एतरेयालोचन" नामक एक विस्तृत भूमिका लिखी है, इस ब्राह्मण का रचयिता 'महीदास' नामक दासी पुत्र शूद्र था। × अतएव यह प्रश्न स्वाभाविक होता है कि जब शूद्रों को वेदाधिकार ही नहीं तब महीदास ने ऐतरेय ब्राह्मण का निर्माण कैसे किया, इस प्रश्न को उठा कर आचार्य सत्यव्रत सामश्रमीजी ने उत्तर दिया है:-"शूद्र ग्रन्थ रचना कर सकता है कि नहीं यह तो साधारण बात है। हम तो ब्राह्मण ग्रन्थों में यहां तक पाते हैं कि शूद्र मन्त्र द्रष्टा तक हुए हैं। +

आप बडे गर्व से शूद्रों को वेदाधिकार के प्रमाण के लिए महर्षि दयानन्द जी की सम्मति उध्दृत करते हूए लिखते हैं :-"शूद्रस्य वेदाधिकारे साक्षात् वेदवचनमपि प्रदर्शितंस्वामी दयानन्देन (वाजसनेयि संहिता २६।२) यथेमां वाचं कल्याणीमावदानिजनेभ्यः। ब्रह्मराजन्याभ्या"

× पं. शिव शङ्कर काव्यतीर्थकृत "जाति निर्णय" पृष्ठ २४९, पं. भगवद्दत्त जी बी. ए. कृत "वैदिक वाङ्मय का इतिहास" द्वितीय भाग, प्रथम संस्करण पृष्ठ २२६,

+ कवष ऐलूष जो जन्मतः शूद्र थे वेदमंत्र-द्रष्टा थे, देखो "ऐतरेय ब्रा. २।१९, आचार्य रामदेव जी कृत "भारतवर्ष का इतिहास" (आर्ष पर्व) पृष्ठ १४७, "ब्राह्मोत्पत्ति मार्तण्ड" पृष्ठ ४१., मासिक पत्रिका "चाँद" प्रयाग वर्ष ११, खण्ड १, मार्च सन १९३३ ई., संख्या ५ पृष्ठ ५५२ "वर्ण व्यवस्था का स्वरूप", मासिक 'सुधा' लखनऊ, वर्ष ३, खण्ड २, अप्रैल सन १९३० ई. संख्या ३, पृष्ठ २५२ कालम २

—लेखक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शूद्राय चार्याय च स्याय चारणाय इति। तदेवंवेदविधेः पक्षपात दोषभाक्त्वं न कथमपीति स्पष्टम् "* ।

अर्थात् शूद्रों के वेदाधिकार विषय में स्वामी दयानन्द ने साक्षात् यजुर्वेद के (२६।२) के "यथेमां वाचं कल्याणीम्" इस मन्त्र का प्रमाण दिया है और इस प्रकार यह भी स्पष्ट है कि वेद के विधान में किसी तरह के पक्षपात का दोष नहीं लगाया जा सकता। राज्यरत्न राज्यमित्र आत्माराम जी (अमृतसरी) § अपने Maharshi Dayananda Saraswati on Untouchability शीर्षक अंग्रेजी लेख में लिखते हैं :—

"But a well-known Sanskrit Scholar of Bengal, Pandit Satyavrata Samasrami, who is neither a member nor a supporter of the Arya Samaj and who is well-known for his Sanskrit research work to the Government of India, has in his latest book.

"Aitareya Alochana" not only given a similar translation and exposition of this epoch-making Mantra, but has in plain words, by giving reference of Swami Dayananda Saraswati and the translation which the great Rishi Dayananda made fifty years ago, corroborated every word of the same. He, like Rishi Dayananda says that from Brahmin down to the cobbler, every human being is entitled to the study of the Vedas." ‡

---

* "ऐतरेयालोचन" पृष्ठ १७. (कलकत्ता संस्करण सन् १९०६ ई०)।

§ रचयिता संस्कार चन्द्रिका, सृष्टिविज्ञान दिग्विज्ञान, ब्रह्मयज्ञ, वैदिक-विवाहादर्श तथा अनुवादक उर्दु गुरुमुखी सत्यार्थप्रकाश इ०

‡ "Dayanand Commemoration Volume" Page 185.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्थात्—बङ्गाल के प्रसिद्ध संस्कृत अन्वेषणकर्त्ता पं० सत्यव्रत सामश्रमी जो कि आर्यसमाजके न तो सदस्य न सहायक हैं और भारतीय सरकार के सुप्रसिद्ध संस्कृत अन्वेषण कर्त्ता हैं, अपनी अन्तिम पुस्तक 'ऐतरेयालोचन' में महर्षि दयानन्द जी के अनुवाद का उद्धरण देते हैं जिसको पचास वर्ष पूर्व महान् ऋषि दयानन्द जी ने बताया था। वह ऋषि दयानन्द जी के सदृश कहते हैं कि ब्राह्मणों से चमारों तक प्रत्येक मानव को वेदाध्ययन का अधिकार है। †

इस मन्त्र के अर्थ ने सचमुच ही राष्ट्र की मृत्यु के मुख से रक्षा कर ली। यदि ऋषि दयानन्द जी ने यह मन्त्र न उध्दृत किया होता तो क्या श्रद्धेय सामश्रमीजी यह सिद्ध कर सकते थे कि शूद्र को वेद पढ़ने का अधिकार है।

महर्षि दयानन्द जी महाराज की इस वेद सम्मत घोषणा को देख जगत विख्यात वचारक श्री रोमा रोलां लिखते हैं:—

‡ "It was in truth an epoch-making date for India when a Brahman not only acknowledged that all human beings have right to know the

---

† ब्रह्मचारी श्री भगवादाचार्य वेद रत्न, निरुक्त भूषण, व्याकरण शिरोमणि, विद्याभास्कर, साहित्यालङ्कार, व्याख्यान वाचस्पति, मासिक पत्रिका, "तत्वदर्शी" बड़ोदा वर्ष ६ माघ कृष्ण ७ वि. १९८३ अङ्क ७ पृष्ठ १-२ में शूद्रों के वेदाध्ययन के विषय में लिखते हुए कहते हैं कि:—......जो कोई पढ़ सके और समझ सके वह वेदों को अवश्य पढ़ सकता है। स्वामी दयानन्द सरस्वती जी ने 'यथेमां वाचं कल्याणीम्' इस मन्त्र से शूद्राधिकार सिद्ध किया है वह बहुत हद तक समुचित है।..

‡ "Life of Shri Rama Krishna Param Hans" Second edition, P. 15

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Vedas, whose study had been previously prohibited by orthodox Brahmins, but insisted that their study and propaganda was the duty of every Arya "

अर्थात् :-वह सचमुच भारत के लिये एक स्वर्णीय नवयुग निर्मात्री तिथि थी जब एक ब्राह्मण (महर्षिदयानन्दजी) ने केवल यह स्वीकार किया कि वेदों के अध्ययन का अधिकार (जो कट्टर पन्थी ब्राह्मणों ने बहुतों के लिए निषिद्ध ठहरा रक्खा था) सब मनुष्य मात्र को है, बल्कि इस पर बल दिया कि वेद का पढ़ना, पढ़ाना, सुनना, सुनाना, सब आर्यों का परम धर्म है।

सायणाचार्य के भाष्यानुसार वद हजारों देवी देवताओं की पूजा और यज्ञ यागादि (जिनमें पशुयज्ञ भी शामिल है) से भरे हुए हैं यहां तक कि गोमांस भोजन का भी प्रतिपादन करते हैं। *

इसके विपरीत महर्षि दयानन्द जी वेदों में मनुष्यमात्र की सर्वतोमुखी उन्नति के द्योतक अत्यन्त उदात्त तत्त्वों का अपने वेद भाष्य में स्पष्ट प्रतिपादन करते हैं। उनके सम्पूर्ण वेद भाष्य में कहीं भी अपने मन्तव्यों का विरोध नहीं पाया जाता।

ऋग्वेद १। १२६ में निम्न लिखित दो मन्त्र आते हैं जिनका श्री सायणाचार्य ने बड़ा ही अश्लील और असङ्गत अर्थ किया है जिसे किसी सभ्य समाज के सामने कहना भी लज्जाजनक है तथापि महर्षि दयानन्द जी के साथ उसकी तुलना अप्रासङ्गिक न होगी। मन्त्र :-

---

* देखो-मासिकपत्र " वैदिकधर्म " औंध, वर्ष २६, अगस्त सन् १९४५ ई. अङ्क ८ पृष्ठ २२५ में मेरा ' आर्यों पर गोमांस भक्षण का दोषारोपण ' शीर्षक लेख। —लेखक।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

" आगधिता परिगधिता या कशीकेव जङ्गहे ।
ददाति मह्यं यादुरी याशूनां भोज्या शता । " मं० ६।

सायण-भाष्यः—सम्भोगाय प्रार्थितो भावयव्यः स्वभार्यां रोमशाम् अप्रौढेति बुद्ध्या परिहसन्नाह भोज्या भोगयोग्या एषा, आगधिता आसमन्ताद् गृहीता स्वीकृता, तथा परिगधिता परितो गृहीता आदरातिशयाय पुनर्वचनम् गध्यं गृह्णातेरिति यास्कः। यद्वा । आगधिता आसमन्तात् मिश्रयन्ती-आन्तरं प्रजाननेन बाह्यं भुजाभिभिरित्यर्थः। गध्यतिर्मिश्रीभावकर्मेति यास्कः। पूर्वस्मिन् पक्षे पुरुषस्य प्राधान्यम्। उत्तरस्मिंस्तु योषित इति भेदः। कीदृशी सा। या जंगहे अत्यर्थं गृह्णाति कदापि न मुञ्चति। अत्यागे दृष्टान्तः। कशीकेव कशीका नाम सुतवत्सा नकुली सा यथा पत्या सह चिरकालं कीडति न कदाचिदपि मुंचति तथैषा अपि। किञ्च भोज्यैषा यादुरी यादुरित्युदकनामो रेतोलक्षणमुदकं प्रभूतं राति ददातीति यादुरी बहुरेतोयुक्तत्यर्थः। तादृशी सती (याशूनाम्) संभोगानां यश इति प्रजनननाम सत्सम्बन्धीनि कर्माणि याशूनि भोगाः। तेषां शता शतान्यसंख्यातानि मह्य ददाति " ‡

यहाँ सम्भोगार्थ रोमशाकी प्रार्थना, अप्रौढा समझ कर उसका परिहास आदि सूचक एक शब्द भी मूलमन्त्र में नहीं है।

---

‡ अति अश्लील शृङ्गारपरक होने के कारण हिन्दी अनुवाद नहीं दिया गया है।

भावार्थ संक्षेप से देना पर्याप्त है कि भावयव्य ऋषि से उसकी पत्नी रोमशा ने संभोग के लिये प्रार्थना की तब भावयव्य ने उसे अप्रौढ़ा (जो रजस्वला न हुई हो) मान कर उसकी मज़ाक करते हुए कहा कि यह संभोग के समय मुझे अत्यधिक आनन्द देने वाली है यह हर समय मेरे साथ संभोग करती है कभी भी नहीं छोड़ती इत्यादि—लेखक।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महर्षि दयानन्द जी ने इस मन्त्र की नीतिपरक व्याख्या की है,

श्री दयानन्द भाष्यम्ः–(आगधिता) समन्ताद् गृहीता § (परिगधिता) परितः सर्वतो गधिता शुभैर्गुणैर्युक्ता नीतिः * (या) (कशीकेव) यथा ताड़नार्था कशीका (जङ्गहे) अत्यन्तं गृहीतव्ये (ददाति) (मह्यम्) (यादुरी) प्रयत्नशीला ! अत्र यत धातोर्बाहुलकादौणादिक उरी प्रत्ययः तस्य दः (याशूनाम्) प्रयतमानानाम् । अत्र यसु प्रयत्ने धातोर्बाहुलकादुण्प्रत्ययः सस्य शश्च (भोज्या) भोक्तुं योग्यानि (शता) शतानि असंख्यातानि वस्तूनि ॥ " †

भावार्थः - अत्रोपमालङ्कार०–यया नीत्याऽसंख्यातानि सुखानि स्युः सा सर्वैः संपादनीया ॥ भाष्यानुवादः—(या) जो (आगधिता) अच्छे प्रकार ग्रहण की हुई (परिगधिता) सब ओर से उत्तम उत्तम गुणों से युक्त (जङ्गहे) अत्यन्त ग्रहण करने योग्य व्यवहार में (कशीकेव) पशुओं के ताड़ना देने के लिये जो औंगी होती है उसके समान (याशूनाम्) अच्छा यत्न करने वालों की (यदुरी) उत्तम यत्न वाली नीति (भोज्या) भोगने योग्य (शता) सैकड़ों वस्तु (मह्यम्) मुझे (ददाति) देती है वह सब को स्वीकार करने योग्य है ।

भावार्थः–इस मन्त्र में उपमालङ्कार है—जिस नीति अर्थात् धर्म की चाल से अगणित सुख हों वह सबको सिद्ध करनी चाहिये ।

इस सूक्त का दूसरा मन्त्र इस प्रकार हैः–

---

§ " गध्ये गृह्णातेः " निरुक्त ५ । १५

* " गध्यतिर्मिश्री भावकर्मा " निरुक्त ५ । १५

† " ऋग्वेद भाष्यम् " पृष्ठ ८४–८५

(तृतीयभागात्मकम् संवत् १९६९ वैदिक यन्त्रालय अजमेर में मुद्रित, द्वितीय संस्करण).

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

" उपोप मे परामृश मा मे दभ्राणि मन्यथाः । सर्वाहमस्मि रोमशा गन्धारीणामिवाविका " । ऋ० १–१२६–७

सायण भाष्यम्ः–रोमशानाम बृहस्पतेः पुत्री ब्रह्मवादिनी परिहसन्तं स्वपतिं प्रत्याह :–

' भोः पते (मे) मां द्वितीयार्थे चतुर्थी (पोप) उपेत्य (परामृश) सम्यक् स्पृश भोगयोग्यामवगच्छेत्यर्थः यद्वा (मे) मम गोपनीयमङ्गम् (उपोप परामृश) अत्यन्तमान्तरं स्पृश । परामर्शाभावशङ्कां निवारयति (मे) मदङ्गानि रोमाणि (दभ्राणि) अल्पानि मा बुध्यस्व । अहं (रोमशा) बहुरोमयुक्तास्मि यतोऽहमीदृशी अतः (सर्वा) सम्पूर्णावयवास्मि रोमशत्वे दृष्टान्तः–गान्धारदेशीयमेषा इव यद्वा (गन्धारीणां) गर्भधारिणीनां स्त्रीणाम् । (अविका) अत्यर्थं तर्पयन्ती योनिरिव यतोऽहमीदृशी अतो मामप्रौढ़ां माऽवबुध्यस्वेति " ।

भाष्यानुवादः– बृहस्पति की पुत्री रोमशा अपने पति से हंसती हुई कहती हैः–हे स्वामिन् ! मुझे स्पर्श करो अर्थात् भोग्य केयोग्य मुझे समझिये । मेरे अङ्ग के बालों को छोटा मत मानो अर्थात् मेरे अङ्ग के बाल बड़े बड़े हैं । कैसे जैसे गन्धार देश की भेडें के शरीर पर बड़े बड़े बाल होते हैं अर्थात् मैं भोग योग्य प्रौढ़ा हूँ मुझे अप्रौढ़ा मत समझो ।

श्री दयानन्द-भाष्यम् :–(उपोप) अति समीपत्वे (मे) मम (परा) (मृश) विचारय (मा) निषेधे (मे) मम (दभ्राणि) अल्पानि कर्माणि (मन्यथाः) जानीयाः (सर्वा) (अहम्) (अस्मि) (रोमशा) प्रशस्तलोमा गन्धारीणामिव यथा पृथिवीराज्यधर्त्रीणां मध्ये (अविका) रक्षिका ॥७॥

भावार्थ :–राज्ञी राजानं प्रति ब्रूयादहं भवतो न्यूना नास्मि यथा भवान् पुरुषाणां न्यायाधीशोऽस्ति तथाऽहं स्त्रीणां न्यायकारिणी भवामि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यथा पूर्वा राजपत्न्यः प्रजास्थानां स्त्रीणां न्यायकारिण्योऽभूवन् तथाहमपि स्याम् । *

भाष्यानुवाद–हे पति राजन् ! जो (अहम्) मैं (गन्धारीणाम् इव) पृथिवी के राज्य धारण करणे वालियों में जैसे (अविका) रक्षा करने वाली होती वैसे (रोमशा) प्रशंसित रोमोंवाली (सर्वा) सब प्रकार की (अस्मि) हूं उस (मे) मेरे गुणों को (परा, मृश) विचारो (मे) मेरे (दभ्राणि) कामों को छोटे (मा, उपाप) अपने पास में मत (मन्यथा :) मानो ।

भावार्थ :–रानी राजा के प्रति कहे कि मैं आपसे न्यून नहीं हूँ जैसे आप पुरुषों के न्यायाधीश हो वैसे मैं स्त्रियों का न्याय करने वाली होती हूँ और जैसे पहिले राजा महाराजों की स्त्री प्रजास्थ स्त्रियों की न्याय करने वाली हुई वैसी मैं भी होऊं ॥ ७ ॥

विद्वान् पाठकवृन्द स्वयं निश्चय करें, कि दोनों अर्थों में से किस अर्थ में अधिक गम्भीरता है और वेद के स्वरूप की दृष्टि से कौनसा अधिक संगत है । सायण के अश्लील उपाख्यान में कोई शिक्षाप्रद बातें नहीं हैं । इसीलिये सायण के प्रति महर्षि दयानन्दजी की सम्मति है कि:—

" यत् सायणाचार्येण वेदानां परममर्थमविज्ञाय सर्वे वेदाः क्रियाकाण्डतत्पराः सन्तीत्युक्तं, तदन्यथास्ति । †

सायणाचार्य ने वेदों के श्रेष्ठ अर्थों को नहीं जानकर कहा है कि सब वेद क्रियाकाण्ड का ही प्रतिपादन करते हैं । यह उनकी बात मिथ्या है ।

---

* वही, पृष्ठ ८५–८६

† "ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका" भाष्यकरण शङ्कासमाधानादि विषयः ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आचार्य सत्यव्रत सामश्रमी कहते हैं:—"वस्तुतो ध्वान्ताच्छन्नविज्ञान कालिकानामशेष शेमुषीनामपि तेषां सायणमहीधरादीनामधि देवतार्थतोऽपि मंत्राभिप्रेतं प्रकृतिविज्ञानं नैव स्फुरितं सम्यगिति तच्छोच्यमेवाभवत्" *

अर्थात्—अन्धकार से आच्छन्न समय में होने के कारण परम विद्वान् होते हुए भी सायण महीधरादि वैदिक विज्ञान न जान सके यह शोक है।

भाषा विज्ञान में विशेष जानकारी प्राप्त करने के लिये संस्कृत भाषा में साधारणतः और वेद विषय में अधिकांश लगने वाले पाश्चात्य पण्डितों को अन्य वेदार्थ उपलब्ध न होने से सायण का ही अनुगामी बनना पडा और जो जो सायण भाष्य में प्राचीन मिथ्या बातों, उपाख्यानों वा मिथ्या धारणाओं पर प्रामाणिकता की मुहर लग चुकी थी, उसी के पीछे इन पाश्चात्यों का समूह चला। इतिहास का सारा वर्णन औपचारिक रूप में तथा त्रिविध प्रक्रिया को न वर्णन करने से विदेशीय विद्वान् हमारी सारी संस्कृति, सभ्यता और साहित्य को उलटे रूप में सब के सामने रखते हैं जिसको पढ़कर हमें लज्जा से नतमस्तक होना पड़ता है।

पाश्चात्यों को वेद विषय में सायण भाष्य ही एक मात्र आश्रय मिला। वह उनके अनुकूल निकला, क्योंकि वे तो चाहते थे कि भारतीयों को अपनी प्राचीन संस्कृति, सभ्यता और साहित्य के प्रति जितनी अश्रद्धा उत्पन्न करने में हम सफलता प्राप्त करेंगे उतना ही हमारा राज्य भारत में स्थायी होता जायगा। उन्होंने वेद के जो अनुवाद अंग्रेजी में किये वे सब के सब सायण की छाया से ही किए।

इन पाश्चात्य पण्डितों ने वैदिक साहित्य के अन्वेषण में जो कुछ

* "ऐतरेयालोचन" पृष्ठ १९६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी परिश्रम तथा व्यय किये उसके लिये हम आर्यावर्तीय उनके आभारी हैं, परन्तु यह सब होते हुए भी उनकी भावना अच्छी नहीं था।

मोनियर विलियम अपने कोष की भूमिका में लिखते हैं:—
" That the special object of his munificent bequest was to promote the translation of the scriptures into Sanskrit, so as to enable his countrymen to proceed in the conversion of the natives of India to the Christian religion."

इसका भाव यह है कि यह संस्कृत अंग्रेजी डिक्शनरी या संस्कृत ग्रन्थों के अनुवाद का कार्य जो मि० बाडन के ट्रस्ट द्वारा हो रहा है, यह सब भारतीयों को ईसाई बनाने में अपने देश (इङ्गलैण्ड) वासियों को सहायता पहुंचाने के लिए है।

इतने ही से विद्वान् पाठक समझ सकते हैं कि पाश्चात्यों ने किस ध्येय को लक्ष्य में रख कर हमारे वैदिक साहित्य तथा अन्यान्य संस्कृत साहित्य में इतना घोर परिश्रम किया। इन विदेशीय विद्वानों के विषय में वेदों के प्रौढ़ विद्वान् परलोकवासी पं० शिवशङ्कर शर्मा काव्यतीर्थ लिखते हैं:—"श्रीमान् मैक्समूलर, राथ और गोल्डस्टकर ने संस्कृत साहित्य पर खूब आन्दोलन किया है। वेदों पर तो ऐसा तीक्ष्ण प्रहार किया है कि युरोप में कई शताब्दी तक वेद भगवान् अपने वास्तविक स्वरूप प्रकट करने में असमर्थ रहेंगे।....पंडित मैक्समूलरजी ने वेदा की हड्डी हड्डी जैसी उडाई है ऐसा किसी ने नहीं किया है। ये अनेक स्थलों में वक्ष्यमाण भाव दिखला गए हैं।...इसी प्रकार विल्सन, म्यूर, मेकडोनल्ड, वेवर, ग्रिफिथ आदि शतशः युरोपीय विद्वानों ने वेदों की तोपों से खूब खबर ली है।" §

§ देखो "वैदिक इतिहासार्थ निर्णय"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वयं महर्षि दयानन्दजी इन पाश्चात्य विद्वानों की योग्यता के विषय में लिखते हैं:—

" अब तक जितना प्रचार संस्कृत विद्या का आर्यावर्त्त देश में है, उतना किसी अन्य देश में नहीं जो लोग कहते हैं कि जर्मनी देश में संस्कृत विद्या का बहुत प्रचार है और जितनी संस्कृत मोक्षमूलर साहब पढ़े हैं, उतना कोई नहीं पढ़ा, यह बात कहने मात्र है। क्योंकि " निरस्तपादपे देशे एरण्डोऽपि द्रुमायते " अर्थात् जिस देश में कोई वृक्ष नहीं होता, उस देश में एरण्ड को ही बड़ा वृक्ष मान लेते हैं, वैसे ही यूरोप देश में संकृस्त विद्या का प्रचार न होने से जर्मन लोगों और मोक्षमूलर साहब ने थोड़ा सा पढ़ा, वही उस देश के लिए अधिक है, परन्तु (यदि) आर्यावर्त्त देश की ओर देखें, तो उनकी बहुत न्यून गणना है; क्योंकि मैंने जर्मनी देश निवासी एक प्रिन्सिपल के पत्र से जाना कि जर्मनी देश में संस्कृत चिट्ठी का अर्थ करने वाले भी बहुत कम हैं; और मोक्षमूलर साहब के संस्कृत साहित्य और थोडी सी वेदव्याख्या देख कर मुझको विदित होता है कि मोक्षमूलर साहब ने इधर उधर आर्यावर्त्तीय लोगों की की हुई टीका देखकर कुछ कुछ यथा तथा लिखा है...इतने से जान लीजिये कि जर्मनी देश, और मोक्षमूलर साहब में संस्कृत विद्या का कितना पाण्डित्य है।" †

" डाक्टर एम० हागसाहब वा सी० एच० टानीसाहब वा आर० ग्रिफिथसाहब आदि कुछ ईश्वर नहीं कि जो कुछ वे लिख चुके, वह विना परीक्षा वा विचार के मान लेने योग्य ठहरे। क्या डाक्टर एम० हागसाहब हमारे आर्य्य ऋषि मुनियों से बढ़ कर हैं कि जिनको

---

† " सत्यार्थ प्रकाश " एकादश समुल्लास

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस सर्वोपरि मान कर निश्चय कर लें और प्राचीन सत्य ग्रन्थों को छोड़ देवें, जैसा कि पण्डित जी (अर्थात् पं० महेशचन्द्र जी न्याय, रत्न, सम्पादक) सो किया है। जो उन्होंने ऐसा किया, तो किया करो मेरी दृष्टि में तो वे जो कुछ हैं, से ही हैं। *

महर्षि दयानन्द-भाष्य पर आक्षेप और उसका निराकरणः—

(क) श्री सायणणाचार्यके पक्षपाती विद्वानों ने महर्षि दयानन्द-भाष्य पर जो आपत्तियां कीं, उनमें सबसे बड़ी आपत्ति यह थी— " मन्त्रभाष्य के प्रथम संस्कृत खण्ड में (अग्निमीळे पुरोहितम्) इसके भाष्य में स्वामी जी ने आग्नि शब्द से ईश्वर का ग्रहण किया है जब कि प्रसिद्ध अर्थ अग्नि शब्द का सिवाय आग के दूसरे कोई नहीं ले सकता ; तथा सायणाचार्य वेदके भाष्यकार की इसी विषय में साक्षी वर्तमान है। " †

समीक्षा—इस आक्षेप का उत्तर महर्षि दयानन्द जी ने अपने जीवन काल ही में ' भ्रान्तिनिवारण ' नामक ट्रैक्ट में दे दिया था।

वेदभाष्य की त्रिविध यौगिक प्रक्रिया को न समझने के कारण ही लोग भ्रम में पड़ जाते हैं। त्रिविध प्रक्रिया में आध्यात्मिक अर्थ के ब्रह्मपरक होने के कारण उसकी प्रधानता कही जा सकती है। क्योंकि आग्नि, इन्द्र, मित्र, वरुण, जातवेदा प्रभृति शब्द प्रधानतया परमात्मावाच्चक हैं जैसे किः—

" इंद्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुरथो दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान्।
एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः॥ "

ऋ० १। १६४। ४६

---

* " भ्रान्ति निवारण " पृष्ठ १०

† देखो. " भ्रान्ति निवारण " पृष्ठ ९ कलकत्ता ओरियण्टल विभाग के प्रिन्सिपल पं० महेशचन्द्र न्यायरत्न का उठाया हुआ पूर्वपक्ष—लेखक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"तदेवाग्निस्तदादित्यस्तद्वायुस्तदु चन्द्रमाः। तदेव शुक्रं तद् ब्रह्म ता आपः स प्रजापतिः" (यजु० ३२।१) इत्यादि मन्त्रों से स्पष्ट है।

ऋग्वेद के प्रथम मण्डल के प्रथम सूक्त की व्याख्या करते हुए जिसका देवता अग्नि है महर्षि दयानन्दजी ने स्पष्ट लिख दिया है कि—"अत्राग्निशब्देन परमार्थ व्यवहारविद्यासिद्धये परमेश्वरभौतिकौ द्वावर्थौ गृह्येते।"

अग्नि सूक्त वाले प्रायः सारे सूक्तों की व्याख्या में ऋषि ने आध्यात्मिक, आधिदैविक अर्थ का निर्देश किया है। वस्तुतः मन्त्रों में इस बात के स्पष्ट चिन्ह पाये जाते हैं कि ये सब मन्त्र जिनका अग्नि देवता है भौतिक अचेतन अग्निपरक नहीं हो सकते।*

उदाहरणार्थ—"ईळे अग्निं विपश्चितं गिरा यज्ञस्य साधनम्। श्रुष्टीवानं धितावानम्। (ऋ० ३।२७।२)

"अग्निं होतारं प्र वृणे मियेधे गृत्सं कविं विश्वविदममूरम्।
(ऋ० ३।१९।१)

"अग्निनाग्निः समिध्यते कविर्गृहपतिर्युवा। ऋ० १-१२-६

---

* अग्निमीळे पुरोहितं...ऋ० १।१।१ की व्याख्या में श्री आनन्द तीर्थ [श्री मध्वाचार्य] ने लिखा है:—

"यथैवाग्न्यादयः शब्दाः प्रवर्तन्ते जनार्दने।
तथा निरुक्तिं वक्ष्यामो ज्ञानिनां ज्ञानसिद्धये॥
इति तेनाग्नि शब्दोऽयमग्र एवाभिपूज्यताम्।
अग्रयत्यमग्रनेतृत्वमात्ति मङ्गाङ्ग नेतृताम्॥

इस प्रकार की निरुक्ति देकर इसे प्रधानतया ईश्वरवाचक तथा गौणतया भौतिकाग्निवाचक बताया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साकं हि शुचिना शुचिः प्रशास्ता क्रतुनाजनि । विद्वां अस्य व्रता ध्रुवा वया इवानु रोहते ॥ [ऋ० २।५।४]

"होता पावकः प्रदिवः सुमेधा देवो देवान्यजत्वग्निरर्हन् " [ऋ० २।३।१] इत्यादि मन्त्रों में अग्निके लिए विपश्चित्, गृत्स [मेधावी], विश्ववित् [सर्वज्ञ], अमर अर्थात् विद्वान्, सुमेधा अथवा बुद्धिमान् इन विशेषणों का प्रयोग पाया जाता है। इससे स्पष्ट प्रकट होता है कि अग्नि शब्द का प्रयोग भौतिक अग्नि के अतिरिक्त वेद में ईश्वर, जीव, विद्वान्, नेता विशेषतः ब्राह्मण आदि के लिए भी होता है। महर्षि दयानन्दजी ने 'अग्नि' के इसी प्रकार के अनेक अर्थ अपने भाष्य में दिये हैं। अन्यान्यभाष्यकारों ने भी 'अग्नि' शब्द के भिन्न भिन्न अर्थ किये हैं। यथा:—

अग्नि "एष परमात्मा अग्निः [सायण अथर्व भा० २।१।४]

"विद्युत् (दुर्ग० पृष्ठ ३६३)

"वेदः, सर्वज्ञः (सन्ध्याभाष्य, पृष्ठ १४,५५,६०) "परमेश्वरः (श्रीकण्ठ श्रीःसूक्त भाष्य पृष्ठ ३)

"विष्णुः (राघवेन्द्र यति' पृष्ठ ८,२३)

ब्राह्मण ग्रन्थों में 'अग्नि' शब्द के बहुत से अर्थ दिये हैं जिनमें से मुख्य ये हैं। "अग्निर्वै सर्वा देवताः" (ऐतरेय ब्रा० १, पं० १, अ० १, खं० १)

इससे परमेश्वर और सांसारिक अग्नि का ग्रहण होता है।

"आत्मैवाग्निः" (शत० ६।७।१।२०)

"अग्निर्वै देवानां मृदुहृदयतमः" (शत० १।६।९।२०)

"अग्निर्वै रेतोधा" (तै० २।१।२।११)

"इयं पृथिवी ह्यग्निः" (शत० ६।१।१।१४)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"वागवाग्निः" (शत० ३।२।२।१३)

"अग्निर्वै पाप्मनोऽपहन्ता" (शत० २।३।३।१३)

"पुरुषोऽग्निः" (शतपथ० १४।४।१।६)

"योषा वाग्निः" (शत० १४।९।१।१६)

"मन एवाग्निः" (शत० १०।१।२।३)

"प्राणो वाग्निः" (शत० ९।५।१।६८)

"वीर्यं वाग्निः" (तै० १।७।२।२)

"ब्रह्माग्निः" (शत० १।३।३।१९)

"अग्ने महाँ असि ब्राह्मण भारत" (कौ० ३।२) (शतपथ० १।४।२।१२)

"एष वा अग्निर्वैश्वानरो यद् ब्राह्मणः" (तै० २।१४।५)

इस प्रकार और भी अग्नि शब्द के अनेकों अर्थ हैं जिससे महर्षि दयानन्दजी के भाष्य की पुष्टि होती है। महर्षि दयानन्दजी सत्यार्थ-प्रकाश के प्रथम समुल्लास में लिखते हैं:—

"अग्न्यादि नामों के मुख्य अर्थ से परमेश्वर का ही ग्रहण होता है....। अग्नि आदि नामों से परमेश्वर के ग्रहण में प्रकरण और विशेषण नियमकारक हैं। इससे...सिद्ध हुआ कि जहां जहां स्तुति, प्रार्थना, उपासना सर्वज्ञ व्यापक, शुद्ध, सनातन और सृष्टिकर्त्ता आदि विशेषण लिखे हैं वहीं वहीं इन नामों से परमेश्वर का ग्रहण होता है......

जहाँ जहां उत्पत्ति, स्थिति प्रलय, अल्पज्ञ, जड़ दृश्य आदि विशेषण भी लिखे हों वहां वहां परमेश्वर का ग्रहण नहीं होता।"

वर्त्तमान काल का विचार भी ऋषि की इस उक्ति का पोषण करता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बङ्गाल के प्रसिद्ध विद्वान् द्विजदासदत्त एम्० ए०, अग्नि आदि नामों द्वारा की गई परमात्मा की वैदिक पूजा के सम्बन्ध में लिखते हैं "—

"What is Agni, that," says Kakshivan "is lighted for worship in every house, " गृहं गृहं उपतिष्ठते अग्निः " ? Was the Vedic Rishi a fool that he should blindly pray to the dead visible fire or agni, visible to all, that he had himself lighted by the friction of two sticks—that he should pray to the fire that can neither hear nor see, saying, " पितेव सूनवेऽग्ने, सूपायनो भव। सचस्वा नः स्वस्तये।" ऋ० १.९ " Be thou readily accessible to us like a father to his son, be thou always with us that we may always attain what is good for us. Was it not God that he prayed to, God identified with the dead visible fire as the Giving spirit symbolised, is identified with its dead symbol, by the law of association of ideas." ¶

अर्थात् अग्नि क्या है इस के सम्बन्ध में कक्षीवान कहता है कि "अग्नि गृह गृह में पूजा के निमित्त प्रदीप्त की जाती है" गृहं गृहं उपतिष्ठते अग्निः। वेदका ऋषि क्या मूर्ख था कि वह निर्जीव–प्रत्यक्ष–अग्नि की स्तुति प्रार्थना करता। अग्नि जो कि सब को प्रत्यक्ष है जिसे कि उसने स्वयं दो अरणियों की रगड़ से उत्पन्न किया है, जो कि न सुन सकती है, न देख सकती है, उसकी पूजा वह यह कह कर करता है कि "हे अग्नि ! तू हमें इस प्रकार प्राप्त हो जैसे कि पिता पुत्र को, और

¶ "Rigveda Unveiled" P. 102

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तू सदा हमारे साथ रह, ताकि हम सदा कल्याण को प्राप्त कर सकें।" क्या यह परमात्मा नहीं, जिसकी पूजा ऋषि ने इन शब्दों में की है? ऋषि ने केवल परमात्मा को निर्जीव प्रत्यक्ष अग्नि में देखा है। इसमें उसका भान किया है। जैसे कि लोग प्रायः जीव का अनन्य भाव देह में देखते हैं। इस प्रकार का देखना विचार साहचर्य का परिणाम हुआ करता है। *

श्री देवीदत्त भट्ट, एडवोकेट ने मासिक "विश्वमित्र" पत्र में "वेद में वर्णित कुछ बर्व्बर तथा अश्लील प्रथाएं" शीर्षक लेख लिखा है। उस लेख को कानपुर के एक विधर्मी पत्रकार ने अपने पत्र में देकर वेद का उपहास किया है। जो जिसका विद्वान् नहीं है और उस विषय में वह अपनी लेखनी दौड़ाता है तो यह उसकी अनधिकार चेष्टा है।

श्रीमान् भट्ट जी ने निष्पक्ष होकर वेदों का स्वाध्याय नहीं किया। महीधर, उव्वट प्रभृति वाममार्गियों के भाष्यों को पढ़ कर यह निर्मूल धारणा बना ली कि 'इस संसार में ऐसी कोई कुप्रथा नहीं है जिसका मूलस्रोत वेदों में न पाया जाय।

श्रीमान् भट्टजी के सदृश अन्य विद्वान् यथा श्री राहुलजी, श्री रजनीकान्त शास्त्री, वकील प्रभृति उच्छृङ्खल विचार वाले व्यक्ति हैं जिन्होंने ऐसी अनर्गल बातें लिख कर जनता की आंखों में धूल झोंकने का वृथा प्रयास किया है।

* विद्वान् लेखक का भाव इन शब्दों में अत्यन्त स्पष्ट है। वह मानता प्रतीत होता है कि वेद में अग्नि आदि नामों द्वारा निर्जीव अग्नि आदि की पूजा नहीं है, अपितु इन नामों द्वारा उसी की पूजा की है जो कि इन निर्जीव अग्नि आदि की आत्मा है, सर्वात्मा है—लेखक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कोई वेदों से गोमांस भक्षण सिद्ध करता है, कोई सेमिटिक भाषा और बेबोलियन की प्रथाएं बतलाता है तो कोई अश्लीलता का वर्णन करता है। मैं भूमण्डल के विद्वानों को आह्वान करता हूं कि कोई वेद से ऐसी बातें सिद्ध कर के दिखलाए। श्रीमान् भट्टजी ने व्यर्थ ही महर्षि दयानन्दजी पर कीचड़ उछालने का प्रयास किया है।

आक्षेप है:—"ऋ० मं० ३, सूक्त ३१, मन्त्र १ में लिखा है कि अपुत्र पिता पिण्ड दानादि क्रियाओं के लिये अपनी ही कन्या में पुत्रोत्पत्ति करले। वेद मन्त्र इस प्रकार है:—

शासद्वह्निर्दुहितुर्नप्त्यं गाद्विद्वां ऋतस्य दीधितिं सपर्यन्।
पिता यत्र दुहितुः सेकमृञ्जन्त्सं शग्म्येन मनसा दधन्वे॥
(ऋ० ३-३१-१)

पूज्य महर्षि दयानन्द ने इस वेद मन्त्र का भाष्य करते हुए 'ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका' में इस का निराला अर्थ किया है। उपर्लिखित मन्त्र यद्यपि स्पष्टतया पिता-पुत्री के अनुचित सम्बन्ध का विधायक है, तथापि स्वामीजी ने वेदों की लाज रखने के लिए इस मन्त्र पर पर्दा डाल कर काल्पनिक अलङ्कार द्वारा यह बतलाया कि इस मन्त्र में पिता से सूर्य और दुहिता से उषःकाल का तात्पर्य है। निवेदन है कि स्वामीजी का यह अर्थ इस लिए असङ्गत प्रतीत होता है कि संसार के किसी कोष अथवा किसी भाष्यकार ने पिता का अर्थ सूर्य तथा दुहिता का अर्थ उषा नहीं किया है। इसके अतिरिक्त हम यह किसी प्रकार कल्पना नहीं कर सकते कि इस गुप्त भाषा (Code words) का अर्थ परमात्मा ने स्वामीजी को ही बतला दिया हो, वास्तव में इस मन्त्र द्वारा वेदों ने पिता-पुत्री का अनुचित सम्बन्ध ही स्पष्टतया निर्देशित किया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। किन्तु स्वामीजी ने बड़े उच्च भाव से प्रेरित होकर उस समय वैदिक धर्म की लाज रखी।" *

समीक्षाः—त्रिविध प्रक्रियानुसार प्रत्येक वेद मन्त्र के तीन प्रकार के अर्थ करने की निरुक्तशैली है। इस मन्त्र के दो प्रकार के अर्थ किये जा सकते हैं, एक तो धर्म परक और दूसरे प्रकृति परक। धर्म परक अर्थों में पुत्रिका-धर्म की मीमांसा है और दूसरा आलङ्कारिक उषा के अर्थों में। निरुक्ताचार्य और सायणाचार्य ने पुत्रिकापरक अर्थ किये हैं और ऋषि दयानन्दजी ने आलङ्कारिक।

ऋषि दयानन्दजी महाराज इस मन्त्र का अर्थ "ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका, ग्रंथ प्रमाण्याप्रमाण्य विषय, प्रकरण में लिखते हैं,—"अयमपि मंत्रोऽस्यैवालङ्कारस्य विधायकोऽस्ति। वह्निशब्देन सूर्यो, दुहिताऽस्यपूर्वोक्तैव। स पिता, स्वस्या उषसो दुहितुः, सेकं किरणाख्यवीर्य्यस्थापनेन गर्भाधानं कृत्वा, दिवसपुत्रमजनयदिति।"

अर्थात्—यह मन्त्र भी अलङ्कार का विधायक है। वह्नि शब्द से सूर्य्य, और दुहिता का पूर्वोक्त तात्पर्य है। वह पिता अपनी दुहिता उषा में किरण रूप वीर्यस्थापना द्वारा गर्भाधान करके दिवस रूप पुत्र उत्पन्न करता है। ऋग्वेद में उपर्लिखित मन्त्र का भाष्य करते हुए महर्षि दयानन्दजी लिखते हैं:—

* देखो-मासिक 'इस्लाम' पत्र कानपुर, वर्ष २ अक्तूबर १९३४ ई० संख्या ४ पृष्ठ ९ कालम २.

[भट्टजी ने इस लेख में अन्यान्य आक्षेप भी किये हैं। हमने यहाँ ऋषि दयानन्दजी के भाष्य को ऊपर जो आक्षेप है उसी का उत्तर दिया है। इस लेख के उत्तर पढ़ने के लिए पाठकों को डा० सत्य प्रकाशजी डी० एस० सी० प्रयाग विश्वविद्यालय, विरचित "वेदों पर अश्लीलता का व्यर्थ आक्षेप" नामक पुस्तक देखनी चाहिये जो 'कलाप्रेस प्रयाग' से प्रकाशित हुई है।

—लेखक]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"(शासत्) शिक्षा देवे (वह्निः) पिता (दुहितुः) कन्या के (नप्त्यं) नाती को। (गात) प्राप्त होवे (विद्वान्) जानता हुआ (ऋतस्य) सत्य के (दीधितिम्) धारण करने वाली की (सपर्यन्) सेवा करता हुआ (पिता) उत्पन्न करने वाला पिता (यत्र) जिस व्यवहार में (दुहितुः) कन्या के (सेकम्) सेचन को (ऋञ्जन) सिद्ध करता हुआ। (शग्मेन) सुखों में स्थित (मनसा) अन्तःकरण से (समृद्धन्वे) सम्यक् प्रसन्न होता है।

भावार्थ—हे मनुष्यो! जैसे पिता के संसर्ग से कन्या उत्पन्न होती है उसी प्रकार सूर्य से उषा उत्पन्न होती है जैसे पति अपनी भार्या में गर्भ धारण करता है। उसी प्रकार कन्या के समान वर्तमान उषा में सूर्य किरण रूपी वीर्य को धारण करता है और उसके द्वारा दिवस रूप पुत्र की उत्पत्ति होती है।

भावार्थ द्वारा ऋषिजी ने अपना तात्पर्य स्पष्ट कर दिया है कि यहाँ वे दो उपमाओं को मानते हैं; ये दोनों उपमायें पृथक् पृथक् हैं। पहली में सूर्य रूप पिता है और उषा रूप कन्या है, क्योंकि सूर्य से उषा उत्पन्न होती है। दूसरी उपमा में सूर्य पति है (पिता शब्द पति का वाचक भी है) और उषा दुहिता अथवा कन्या है। इस दुहिता या कन्या का अर्थ अपनी पुत्री नहीं है।

दुहिता का अर्थ दूरेहिता-कन्या मात्र है। यह कन्या विवाहोपरान्त सूर्य की पत्नी हुई।

मिस्टर कीथ और मैकडोनैल्ड अपने "Vedic-Index" में महर्षि दयानन्दजी के अर्थों की पुष्टि करते हैं:—On mention further made in Rigveda to the wedlock of Prajapati and his daughter which is however interpreted

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

mythologically in the Brahmans on interpretation which may be correct, but even though the mythological interpretation of the passage were not justified no connection could be drawn from the hymn."

पिता का अर्थ 'सूर्य होता है। देखिये—पिता=सूर्य "एष वै पिता एष (सूर्यः) तपति" (शतपथ ब्रा० १४–१–४–१५)

यहां पिता पुत्री का सम्बन्ध आकाशीय पदार्थों का है न कि पृथिवी के मनुष्यों का। इसकी पुष्टि में वेदमन्त्र।

"द्यौर्मे पिता जनिता नाभिरत्र बन्धुर्मे माता पृथिवी महीयम्।
उत्तानयोश्चम्वो३र्योनिरन्तरत्रा पिता दुहितुर्गर्भमाधात्॥

(ऋ० १–१६४–३३)

इस मन्त्र में बतलाया है कि–द्यौः पिता है, नाभिः बन्धु और यह विस्तृत भूमि माता है और इस पृथिवी में सूर्य गर्भ धारण करके वनस्पति आदि उत्पन्न करता है।

उषा सूर्य की कन्या है। देखिये–"सरेतो मिथ्रो भवति क्ष्मयारेतः संजग्मानो निषञ्चदिति रेतः समृद्ध्याएव" (ऐतरेय ब्रा० ६–३०–१)

सायण-भाष्यः—प्रजापतिर्यदा स्वां दुहितरं दिवमुषासिंचाधिष्कन्नध्यस्कन्दत्तदानीमेव क्ष्मया भूम्या स्वदुहिता संजग्मानः संगप्राप्तोऽस्मिंल्लोके।"

अर्थात्—प्रजापति सूर्य की दुहिता=पुत्री उषा है।

'मीमांसा' पर वार्तिककार की सम्मति,—"प्रजापतिस्तावत् प्रजापालनादादित्य एवोच्यते सचारुणोदय वेलाया मुषसमुद्यन्नभ्यैत्।..."

अर्थात्–प्रजापति सूर्य है, प्रातःकाल की लाली, जो सूर्य के उदयकाल में पूर्व की ओर दिखाई देती है वह उषा सूर्य की दुहिता है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूर्य से उत्पन्न होती है। उस उषा रूप दुहिता में पिता रूप सूर्य किरण रूप वीर्य को डालता है।

द्यौर्मे पिता पाता पालयिता वा......पिता दुहितुर्गर्भं दधाति पर्जन्यः पृथिव्याः" (निरुक्त ४।२१)

अर्थात्—पिता के समान पर्जन्य अर्थात् जलरूप जो मेघ है उसकी पृथिवी रूप दुहिता अर्थात् कन्या है क्योंकि पृथिवी की उत्पत्ति जल से ही है। जब वह उस कन्या में वृष्टि द्वारा जलरूप वीर्य को धारण करता है तब उस से गर्भ रह कर ओषध्यादि अनेक पुत्र उत्पन्न होते हैं।

"प्रजापतिर्वै स्वां दुहितरमभ्यध्यायद्दिवमित्यन्य आहुरुषसमित्यन्ये..

ऐतरेय ब्रा० पं० ३; कंडिका ३३,३४)।

"पजापतिर्वै सुपर्णोगरुत्मानेष सविता। (शतपथ० १०।२।२४)

पुनाति ते परिस्रुत ँ सोम ँ सूर्यस्य दुहिता। वारेण शश्वता तना।"

(यजु० १९।४)

महीधर भाष्यः—"सूर्यस्य दुहिता पुत्री श्रद्धा ते तव परिस्तुतं सुतां सोमश्च पुनाति शोधयति।"

अर्थात्—तेरे परिस्रुत सोम को सूर्य की पुत्री श्रद्धा पवित्र करे।

इससे स्पष्ट है कि पिता शब्द से सविता का और दुहिता शब्द से उषा का भी अलंकार ले लेना महर्षि दयानन्दजी की मनोनीत कल्पना नहीं है, प्रत्युत वेद ने स्वयं इस अलंकार को स्पष्ट किया है।

वैदिक अनुसंधान कर्त्ता पं० रघुनन्दन शर्मा साहित्यभूषण भी अपनी सम्मति इस प्रकार देते हैं:†—...."इन मन्त्रों में 'पिता दुहितुर्गर्भमाधात्' और 'पिता यत्र दुहितुः सेकमृंजन्' पद आये हैं,

† वैदिक सम्पत्ति पृ. सं. ६०३

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिनका यह अर्थ होता है कि पिता दुहिता में गर्भधारण करता है। इस घटना का खुलासा शतपथ, ऐतरेय और निरुक्त आदि वैदिक ग्रन्थों में इस प्रकार लिखा हुआ है कि ऊषा सूर्य की कन्या है। सूर्य उसी ऊषा में अपने किरणरूपी वीर्य को स्थापित करके गर्भ धारण करता है, जिससे दिन उत्पन्न होता है; अथवा जलरूपी पिता अपनी पृथिवीरूपी कन्या में मेघद्वारा गर्भ धारण करता है, जिससे वनस्पति पैदा होती है। इस अलंकार के वर्णन से यह बात स्पष्ट हो गई कि ये पिता और पुत्री कोई जीव धारी मनुष्य नहीं हैं, प्रत्युत प्राकृतिक जड़ पदार्थ हैं। पर शंका करने वाले कहते हैं कि पिता और पुत्री के लिये ऐसा रूपक भी अश्लील है। क्या वेदों को कोई और दूसरा रूपक नहीं मिलता था, जो ऐसे भद्दे रूपकों का वर्णन किया है? किन्तु हम कहते हैं कि ऐसे रूपक की ही आवश्यकता थी। संसार में जब तक इस प्रकार के पिता भी कभी कभी सुनने में आ जाते हैं तो एक कानून की पुस्तक में— ज्ञान की पुस्तक में—केवल असभ्यताके डरके कारण उसका वर्णन न करना और उसको पाप न बतलाना कहां तक युक्ति युक्त है, यह शंका करने वाले ही समझलें। जब संसार में इस प्रकार की घटना का अपवाद होता है; तो भला वेद किन शब्दों से उसका वर्णन करते? वेदों ने तो सभ्यता की पराकाष्ठा करदी है, जो ऐसा वर्णन किसी मनुष्य के नाम से न करके जड़ और अन्धी प्रकृति के नाम से किया है। हाँ, यह वर्णन अवश्य अश्लील होता, यदि यह केवल मनोरंजन के लिये किया जाता और इसको पाप न बतलाया जाता, पर बात सर्वथा उलटी है, वेदों ने इस बीभत्स वर्णन के साथ साथ संसार के एक बहुत बड़े पाप का खुलासा करते हुए उपदेश दिया है कि किसी मनुष्य को अपनी पुत्री के साथ इस प्रकार का घृणित व्यवहार कभी न करना चाहिये। अथर्व वेद में आज्ञा है कि—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यस्त्वा स्वप्ने निपद्यते भ्राता भूत्वा पितेव च ।
ब्रजस्तान्त्सहतामितः क्लीबरूपांस्तिरीटिनः ॥ (अथर्व० ८।६।७)

अर्थात् तुझको यदि सोते समय भूल कर भी तेरा भाई अथवा पिता प्राप्त हो, तो वे दोनों गुप्त पापी औषधिप्रयोग से नपुंसक करके मार डाले जायें । कैसा कठोर दण्ड है ! जब स्वप्न में भी—धोखे में भी—इस प्रकार के कुत्सित विचार आने पर पिता को इतना बड़ा दण्ड देने का विधान है, तब उपर्लिखित अलंकार का यही अभिप्राय निष्पन्न होता है कि वेदों ने ऐसे अपवाद की बीभत्सता की पराकाष्ठा दिखलाने और उसकी निन्दा करने के लिए ही स्थान दिया है । वेदों में ही नहीं प्रत्युत वेद के पश्चात् साहित्य में भी इस अलंकार के धोखे से बचने के लिए इसकी निन्दा की गई है । यथा—

प्रजापतिः स्वां दुहितरमभिदध्यौ दिवंवोषसंवा । मिथुन्यन या स्यामिति तां संबभूव तद्वै देवानामाग आसं य इत्थं स्वां दुहितरमस्माकं स्वसारं करोति । अर्थात्—प्रजापति ने अपनी दुहिता द्यौ अथवा ऊषा को बुरी दृष्टि से चितवन किया और इसके साथ रहूंगा, इस प्रकार का विचार करके संग किया । पर देवों के मत से यह पाप हुआ । उन्होंने कहा कि जो इस प्रकार अपनी दुहिता अर्थात् हमारी बहन के साथ बर्ताव करता है वह पाप करता है । इस प्रकार से यहाँ इस जड़ ऊषा अलंकार से स्पष्ठ कह दिया गया है कि यदि कोई ऐसा करेगा तो वह पापी समझा जायेगा । भागवत में भी कहा गया है कि—

"नैतत्पूर्वैः कृतं त्वद्य न करिष्यन्ति चापरे ।
यत्त्वं दुहितरं गच्छेरनिगृह्यांगजं प्रभुः ॥ (श्रीमद्भागवत ३।१२)

अर्थात्–हे प्रजापति ! तुमने अपनी कन्या को ग्रहण करके जैसा पाप किया है वैसा न कभी किसी ने पूर्व में किया था और न कोई

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भविष्य में करेगा। इन प्रमाणों से सूचित होता है कि वेदों का यह अलंकार ऐसे कृत्यों में पाप दिखलाने के लिये प्राकृतिक जड़ ऊषा में प्रकट किया गया है और वेदों के अतिरिक्त अन्य साहित्य में भी ज़ोर से कहा गया है कि इस प्रकार का सम्बन्ध पाप है इस लिए मनुष्यों में जारी न हो। *

इन के लेख से भी महर्षि दयानन्द जी के अर्थ की पुष्टि होती है; अतः भट्ट जी का आक्षेप निर्मूल है। वेद-भाष्य की शैली न समझने के कारण ही उलझन में पड़ गये हैं।

महर्षि दयानन्द जी पर प्रबल आक्षेप यह किया जाता है कि—"उन्होंने वेदों में विज्ञान का मूल दिखाने का व्यर्थ श्रम किया है। वेदों को धर्म का मूल कथञ्चित् माना जा सकता है किन्तु उनमें विज्ञान सिद्ध करने की चेष्टा स्वामी दयानन्द की अपनी कपोलकल्पित है। वेद का सम्बन्ध तो केवल पारलौकिक या आध्यात्मिक विषयों के साथ ही है।"

देखिये–पं०बलदेव उपाध्याय एम० ए०, साहित्याचार्य, ऋषि दयानन्दजी पर आक्षेप करते हैं:–"स्वामी जी के अनुयायी वैदिक पंडितों की सम्मति में वेदों में विज्ञान के द्वारा आविष्कृत समस्त पदार्थ (रेल, तार, वायुयान, आदि) की सत्ता बतलाई जाती है। तब क्या वेद महिमा इसी में है कि विज्ञान की समग्र वस्तुओं का वर्णन उसमें उपलब्ध हो। वेद आध्यात्मिक ज्ञान के निधि हैं। भौतिक विज्ञान की वस्तुओं का वर्णन करना उनका वास्तव उद्देश्य नहीं है। ऐसी दशा में यौगिक प्रक्रिया के अनुसार इन चीजों को वेदों के भीतर बतलाना उचित नहीं जान पड़ता। इस प्रकार स्वामीजी की पद्धति को हम सर्वांश में स्वीकृत नहीं कर सकते" †

---

* "वैदिक संपत्ति" द्वितीय संस्करण पृष्ठ ६०४,६०५.

† "आचार्य सायण और माधव" नामक ग्रन्थपृष्ठ १२३ (हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग द्वारा प्रकाशित प्रथम संस्करण २००३ वि०)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आप पुनः लिखते हैं—" कैरपि समाजविशेषानुरागमादधानैर्वेदानां विधीयतेऽध्ययनं सह परिश्रमेण....परन्तु...मंत्रोच्चारणं कुर्वन्तः सततं कदथयन्ति । अपरञ्चामी वेदेषु नवीनानामपि, आधुनिकैः पाश्चात्य-विज्ञानवेदिभिः प्राकाश्यं नीतानामाविष्काराणां धूम्रयान, वायुयान, तड़िच्छकट स्वनग्राहादीनां नैव कल्पितां संभावनामपितु वास्तविकीं सत्तां वेदे मन्यन्ते । सर्वेषामाविष्कृतानामाविष्करिष्यमाणानां च विज्ञानतत्त्वा-नामाकरो वेद एवेति तेषामभिमतं मतामवावलोक्यते ।....परन्तु एषोऽपि सिद्धान्तो नैव विद्वज्जनमनोरमः । " §

अर्थात्—समाज विशेष से प्रेम रखने वाले* लोग भी वेद पढ़ते हैं परन्तु उनका उच्चारण ठीक नहीं । वे आधुनिक पाश्चात्य विज्ञान धूम्रयान (रेलगाड़ी), वायुयान (विमान), बिजली से चलने वाली गाड़ी तार आदि की वेदों में कल्पित नहीं किन्तु वास्तविक सत्ता को मानते हैं । ....परन्तु यह सिद्धान्त विद्वानों को पसन्द नहीं ।

पं० रघुनन्दन शर्मा साहित्यभूषण अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ ' वैदिक सम्पत्ति‡ में लिखते हैं:-आर्यों की मौलिक सभ्यता के समय न तो भव्य नगरों, न रेल, तार, मोटर आदि यानों और न भौतिक शस्त्रास्त्रों का ही व्यवहार था और न मद्य, मांस पशु यज्ञ, लिंग पूजन आदि आसुरी प्रवृत्तियों का ही प्रचार था ।....जो लोग वेदों और अन्य आर्य साहित्य से रेल, मोटर, बिजली की रोशनी का वर्णन निकाल कर

---

§ देखो-पं० बलदेव उपाध्याय एम० ए०, साहित्याचार्य सम्पादित "वेदभाष्य भूमिका संग्रहः' प्रस्तावना पृष्ठ २० (सन १९३४ ई. चौखम्बा संस्कृत सीरिज़ आफिस, काशी से प्रकाशित)

* आर्यसमाजियों से तात्पर्य है—लेखक ।

‡ देखो-" वैदिक सम्पत्ति " द्वितीय संस्करण भूमिका पृष्ठ ८ ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

युरोप की वर्तमान भौतिक उन्नति के साथ मेल मिलाते हैं वे गलती करते हैं §.......

समीक्षाः—वेदों में विज्ञानादि के सम्बन्ध में महर्षि दयानन्द जी का विचार कोई नवीन नहीं है। यह विचार कि वेद केवल आध्यात्मिक और पारलौकिक विषयों से सम्बन्ध रखते हैं सर्वथा अशुद्ध है। वेदों में राज्यसत्ता, प्रजातन्त्र शासन, मातृभूमि के प्रति कर्त्तव्य इत्यादि विषय पाये जाते हैं यह बात सर्वसम्मत है। पं० बलदेव उपाध्याय एम. ए ने जिस सायण की इतनी प्रशंसा और ऋषि दयानन्दजी पर आक्षेप किया है, उसी सायण ने "अथर्व भाष्य भूमिका" में अथर्ववेद के विषयों का कौशिक सूत्रादि के आधार पर निर्देश करते हुए उनमें "सेनापत्यादि प्रधानपुरुषजयकर्माणि, शत्रूत्सादितस्य राज्ञः पुनः स्वराष्ट्र-प्रवेशकानि, राज्याभिषेकः, कृषिपुष्टि कराणि, शस्त्राद्यभिघातजरुधिरप्रवाह-निरोधकानि, वातपित्तश्लेष्मभैषज्यानि, शिरोक्षिनासिकाकर्णजिह्वाग्रीवादि रोगभैषज्यानि सुख प्रसव कर्माणि, जनानामैकमत्यसम्पादकानि सांमनस्यानि" इत्यादि का उल्लेख किया है। ये विषय आध्यात्मिक अथवा पारलौकिक नहीं यह बात स्पष्ट ही है। वेद के अन्दर सब विद्याओं का बीज पाया जाता है।

ऋभुओं ने एक ऐसे रथ का निर्माण किया था, जो सर्वत्र जा सकता था" (ऋ० १।२०।३; १०।३९।१२।१।९२।२८ और

---

§ ऐसी गलती करने वाला महर्षि दयानन्द के सिवाय और कौन हो सकता है ! (देखो-मासिक पत्र "दयानन्द सन्देश" देहली, माला ३, मई १९४७ ई० मुक्ता ५, पृष्ठ ४३८ "वैदिक सम्पत्ति पर आपत्ति" शीर्षक लेख)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१२९।४;५।७५।३ और ७७।३;८५।२९;१।३४।१२ और ४७।२; १।३४। और ११८।१-२ तथा १५७।३*

वैज्ञानिक पुस्तकों का प्रभाव होने पर बड़े बडे ऋषियों, महर्षियों और रावण सरीखे अनेकानेक प्रकाण्ड वेद वेत्ताओं के बनाये वैदिक भाष्यों का सर्वथा अभाव हो गया। वेद का एक भी पूर्ण वैज्ञानिक भाष्य न रहा। उस समय सायण सरीखे प्रकाण्ड विद्वान् ने सर्व साधारण में प्रचलित यज्ञ-प्रथा के कारण व्याकरण के बल से याज्ञिक अर्थ कर के किसी तरह लोगों को वेदार्थ समझाने और वेदोद्धार तथा वेद-प्रचार करने का प्रबल प्रयत्न किया। बैदिक-विज्ञान-सम्बन्धी विशद व्याख्यान न रहते हुए भी उनका यह प्रयत्न स्तुत्य है। जिसके कारण थोड़ा बहुत भी वेदार्थ ज्ञान हो रहा है। यहाँ यह कहना अनुचित न होगा कि, सायणाचार्य के याज्ञिक अर्थ से वैदिक विज्ञान पर उतना पर्दा नहीं पड़ा जितना उव्वट, महीधर सरीखे वैयाकरण भाष्यकारों के भाष्यों से पड़ा। इन लोगों ने तो लौकिक व्याकरण के वल से वैदिक शब्दों को इतना तोड़ा मरोड़ा कि, वैदिक-विज्ञान "निहितं गुहायाम्" हो गया है। कहने का सारांश यह है कि उपर्लिखित भाष्यकारों के भाष्यों से हमें वैदिक विज्ञान रहस्यों का पूरा पता नहीं लगता प्रत्युत हमें कई जगह उलझनों और सन्देहों में पड़जाना पड़ता है। §

---

* विस्तारपूर्वक जानने के लिये देखो "वेदों में विमान" शीर्षक लेख डा० बालकृष्ण जी एम० ए०, पी० एच० डी०, एफ० आर० ई० एस० का 'मासिक गङ्गा का वेदाङ्क पृष्ठ २०५-२०६ में)

§ यह सम्मति साहित्याचार्य पं० कालीचरण झा चतुर्वेदोपाध्याय, जिला स्कूल, पूर्णिया की है (देखो-'गङ्गा' का 'वेदाङ्क' पृष्ठ २०९ से २१३ तक)

पुस्तकालय
गुरुकुल कांगड़ी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"युवं पेदवे पुरुवारमश्विना स्पृधां श्वेतं तरुतारं दुवस्यथः। शर्यैरभिद्युं पृतनासु दुष्टरं चर्कृत्यमिन्द्रमिव चर्षणीसहम्॥ (ऋ० १। अ० ८। व २१। मं० १०)

ऋषिदयानन्दभाष्यः—(युवं पेदवे०) इस मन्त्र से तारविद्या का मूल जाना जाता है। पृथिवी से ऊत्पन्न धातु तथा काष्ठादि के यन्त्र और विद्युत् अर्थात् बिजली इन दोनों के प्रयोग से तार विद्या सिद्ध होती है। क्योंकि (* द्यावा० पृथिव्योरित्येके०) इस निरुक्त के प्रमाण से इनका आश्वि नाम जान लेना चाहिये। (पेदवे) अर्थात् वह अत्यन्त शीघ्र गमनागमन का हेतु होता है। (पुरुवारम्) अर्थात् इस तार विद्या से बहुत उत्तम व्यवहारों के फलों को मनुष्य लोग प्राप्त होते हैं। (स्पृधाम्) अर्थात् लड़ाई करने वाले जो राज पुरुष हैं उनके लिये वह तार विद्या अत्यन्त हितकर है, (श्वेतं०) वह तार शुद्ध धातुओं का होना चाहिये। (अभिद्युम्) और विद्युत् प्रकाश से युक्त करना चाहिये। (पृतनासु दुष्टरम्) सब सेनाओं के बीच में जिसका दुःसह प्रकाश होता और उल्लङ्घन करना अशक्य है। (चर्कृत्यम्) जो सब क्रियाओं के बारंबार चलाने के लिये योग्य होता है। (शर्यैः) अनेक प्रकार कलाओं के चलाने से अनेक उत्तम व्यवहारों को सिद्ध करने के लिये विद्युत् की उत्पत्ति करके उसको ताड़न करना चाहिये। (तरुतारम्) जो इस प्रकार का तारारव्य यन्त्र है उसको सिद्ध करके प्रीति से सेवन करो। किस प्रयोजन के लिये? (पेदवे) परम उत्तम व्यवहारों की सिद्धि के लिये तथा दुष्ट शत्रुओं के पराजय और श्रेष्ठ पुरुषों के विजय के लिये तार विद्या सिद्ध करनी चाहिये। (चर्षणीसहम्०) जो मनुष्य की सेना के युद्धादि अनेक कार्य्यों के सहन करने वाला है। (इन्द्रमिव०) जैसे

* द्यावा पृथिव्यावित्येके, निरुक्त अ० १२- खं १६–१९

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समीप और दूरस्थ पदार्थों का प्रकाश सूर्य्य करता है वैसे तारयन्त्र से भी दूर और समीप के सब व्यवहारों का प्रकाश होता है। (युवं) (दुवस्यथः) यह तारयन्त्र पूर्वलिखित आश्वि के गुणों से ही सिद्ध होता है। इस को बड़े यत्न से सिद्ध करके सेवन करना चाहिये। इस मन्त्र में पुरुष व्यत्यय पूर्वलिखित नियम से हुआ है अर्थात् मध्यम पुरुष के स्थान में प्रथम पुरुष समझना चाहिये। इसी प्रकार ऋ० १।८।८।३,४; १।८।८,९,५,१; १।३।४।२; १।३।५।१; १।२।३४।३; १।६।९।४; २।३।२३।१,२ में नौ विमानादि विद्या का वर्णन है ‡

"अनश्वो जातो अनभीशुरुक्थ्यो रथस्त्रिचक्रः परि वर्तते रजः। महत्तद्वो देव्यस्य प्रवाचनं द्यामृभवः पृथिवीं यच्च पुष्यथ ॥१॥" (ऋ० ४।३६।१)

इस का अर्थ पं० मधुसूदन झा 'विद्यावाचस्पति' जयपुर, करते हैं:—"विना घोड़ों का तीन पहियों वाला रथ जो अन्तरिक्ष में उड़ सके, हे ज्ञानियो! वह प्रशंसा के योग्य है † यहाँ विना घोड़ों के चलने वाला रथ का वर्णन है।

यद्यपि पं० रघुनन्दन शर्मा 'वैदिक सम्पत्ति' की भूमिका में वर्त्तमान भौतिक उन्नति को वेद से दिखलाना गलती समझते हैं, तथापि वे स्वयं पृष्ठ ३९४ से ४०० तक अनेक प्रमाणों से' विविधयन्त्र, विमान, तोप, बन्दूक, बारूद, बोलनेवाली पुतलियाँ; दूर समाचार भेजने के साधन भौतिक विज्ञान का सविस्तर वर्णन करते हैं।

विमान का वर्णन करते हुए आप लिखते हैं:—"विमान नामक यन्त्र तो वैदिक काल से ही इस देश में प्रचलित था। वेद में विमान

---

‡ देखो—"ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका" नौ विमानादि विद्या विषय प्रकरण—

† "इन्द्र विजय" पृष्ठ ११४

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के बनने की विधि बतलाते हुए कहा गया है कि जो आकाश में पक्षियों के उड़ने की स्थिति को जानता है, वह समुद्र-आकाश की नाव-विमान को जानता है।" *

अतः इन्होंने अपने आक्षेप का निराकरण स्वयं ही करदिया है।

"महर्षि स्वामी दयानन्दजी सरस्वती ने ऐतिहासिक अन्वेषण द्वारा बतलाया था कि इस देश के अतीत काल में एक ऐसे पंखे का आविष्कार हुआ था जो एक वार चाबी देने से एक मास तक बराबर चला करता था। एक अमेरिकन आलोचक स्वीकार करते हैं कि प्राचीनभारत में वाष्पयन्त्र (Steam Engine) हुआ करते थे जो अग्नि-रथ के नाम से प्रसिद्ध थे। ¶

मि० जैकोलियट नामक सुप्रसिद्ध विद्वान् ने अपने "The Bible in India" नामक ग्रन्थ में अनेक मतों की सृष्टयुत्पत्ति विषयक कल्पनाओं का उल्लेख कर के वैदिक विचार के बारे में निम्न उद्गार निकाला है, जो अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

"Astonishing fact! the Hindu revelation (Veda) is of all revelations the only one whose ideas are in perfect harmony with modern science as it proclaims the slow and gradual formation of the world." अर्थात्—यह एक बड़ी ही आश्चर्यजनक बात है! ईश्वरीय धर्मग्रन्थों में से केवल वेद है जिसके विचार वर्तमान विज्ञान के

---

* देखो—"वैदिक-सम्पत्ति" द्वितीय संस्करण पृष्ठ ३९४

¶ "Hindu Superiority" By. H. B. Sarda या "महान् भारत" पृष्ठ ३८२

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साथ सम्पूर्णतया संगत हैं; क्योंकि उस (वेद) में भी विज्ञान के अनुसार जगत् की क्रमिक रचना का प्रतिपादन है।

अमेरिकन विदुषी महिला ह्वीलर विलाक्स (Mrs. Wheeler Willox) बतलाती हैं:—

"We have all heard and read about the ancient religion of India. It is the land of the great Vedas, the most remarkable works, containing not only religious ideas on a perfect life, but also facts which all the science has since proved true. Electricity, Radium, Electrons, Airships, all seem to be known to the sires who found the Vedas"‡

हम लोगोंने प्राचीन भारतीय धर्म के विषय में सुना और पढ़ा है। भारत उन अत्यन्त महत्त्वपूर्ण वेदों की भूमि है, जिनके अन्दर न केवल पूर्ण आदर्श जीवन के लिए धार्मिक तत्त्वों का निरूपण है। बल्कि उन सच्चाइयों का भी निर्देश है जिनको सारे विज्ञानशास्त्र ने सत्य प्रमाणित किया है। वैदिक ऋषियों को विद्युत्, रेडियम्, ऐलेक्ट्रांस हवाईजहाज इत्यादि सब बातों का ज्ञान था, ऐसा प्रतीत होता है।

प्रोफेसर मैक्समूलर अपने "Biographical Essays" में लिखते हैं :—

"If any historical or geographical names occur in the Vedas, all are explained away because if taken in their natural sense, they would impart to the Vedas historical or tempered talent. To Swami Dayanand, every thing contained in the

‡ "Sublimity of the Vedas" p. ८३

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Vedas was not only perfect truth, but he went one step further and by their interpretation, succeeded in persuading others that everything worth knowing even the most recent inventions of modern science were alluded to in the Vedas. Steam-engine, electricity, telegraphy and wireless, morconogram were shown to have been known at least in the germs to the poets of the Vedas.

अर्थात्—ऋषि दयानन्दने वेदों में आयेहुए ऐतिहासिक तथा भौगोलिक नामों की व्याख्या (यौगिक पद्धति से) की है—क्योंकि वेदों में कोई ऐतिहासिक विवरण नहीं है। ऋषिदयानन्द जी की दृष्टि में जो कुछ भी वेदों में है वह न केवल पूर्ण सत्य है अपितु उससे एक पद आगे बढ़ कर ऋषि कहते हैं कि वेदों में ज्ञान के योग्य वस्तु का वर्णन है। यहां तक कि अति नवीन आधुनिक आविष्कारों का भी (जैसे कि स्टीम एञ्जिन, बिजली, बिना तारके तार आदि) प्रतिपादन वेदों में किया गया है; और कम से कम मूल बीज रूप में तो अवश्य ही उक्त वस्तुओं का वर्णन वेदों में है।

आचार्य श्री सत्यव्रतजी सामश्रमी और वेदोंमें विज्ञानः—

आचार्य श्री सत्यव्रतजी सामश्रमी कलकत्ता के संस्कृत कौलेज के वैदिक साहित्य के प्रोफेसर थे। पाश्चात्य तथा पूर्वीय वैदिक विद्वानों में इनकी बड़ी प्रतिष्ठा थी। बंगाल एशियाटिक सोसाइटी के कई ग्रन्थों का इन्होंने सम्पादन किया है। बङ्गाल में वैदिक साहित्य के प्रचार का श्रेय सर्वप्रथम इन्हीं को है इन्होंने वैदिक साहित्य पर बहुत सी पुस्तकें लिखी हैं। आपके "त्रयी चतुष्टय", "त्रयी परिचय", "निरुक्तालोचन" "ऐतरेयालोचन" आदि ग्रन्थ अत्यन्त प्रसिद्ध हैं। आपने अपने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

" त्रयीचतुष्टय " नामक संग्रह ग्रन्थ में वेदों के भाष्यकारों और विशेष तया सायणभाष्यकार के सम्बन्ध में अपनी सम्मति लिखी है। आप लिखते हैं :–

'When the त्रयीसंग्रह was being compiled, the impression grew upon me that the real meaning of many mantras did not come out in Sayana's Commentary, and the desire became strong in me to Publish the interpretation of Yaska and other old expositors of the Veda".

अर्थात् " त्रयी संग्रह ' पुस्तक का नव संकलन हो रहा था उस समय मुझे अनुभव हुआ कि सायण-भाष्य में बहुत से मन्त्रों के यथार्थ भाव प्रकट नहीं हो सका, इस लिए मुझ में यह इच्छा प्रबल हुई कि यास्क तथा अन्य प्राचीन भाष्यकारों के भावार्थों का मैं स्वय उद्घाटन करूं। " वे आगे लिखते हैं—

At a time when photography, phonography gaslight, telegraph, the telephone, Railway and baloons had not been introduced into the country, how could our people understand any verses referring to these things. "

" उस समय* जब कि फोटोग्राफी, फोनोग्राफी, गैसलाइट, टैलीग्राफ, टैलीफोन, रेलवे और हवाईजहाजों का भारत में प्रचार न था, किस प्रकार भारत के वेदभाष्यकर्त्ता उन मन्त्रों के यथार्थ रहस्यों को समझ सकते थे, जिनमें कि इन वस्तुओं के इशारे हों। "

वे आगे और लिखते हैं—Our opinion is, that in

* ' उस समय से तात्पर्य यहां सायणाचार्य के समय की ओर है--लेखक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Vedic times, our country had made extra-ordinary progress. In those days the sciences of Geology Astronomy, and Chemistry were called "आधिदैविक विद्या" and those of Psychology and Theology "आध्यात्म विद्या". Though the works embodying the scientific knewledge of those times are entirely lost, there are sufficient indications in Vedic works of those sciences having been widely known in those days. It is needless to say that the reason why these indications are not understood now is due to the imperfect interpretation of an expositor having no knowledge of the sciences. The study of certain portions of the Vedas leads even to the conclusion that certain scientific researches had been carried in the country to such perfection that...even America, the constant source of scientific discoveries and the advanced countries of Europe have not yet attained it. It is this which makes it impossible for us to understand the real purport of such passages. In fact, a full and satisfactory interpretation of the Veda requires a perfect familiarity with all these sciences on the part of the expositor, and it is simply a misfortune to undertake its exposition without such familiarity.

अर्थात्—हमारी सम्मति है कि वैदिक काल में हमारे भारत देश ने पर्याप्त उन्नति कर ली थी उस समय भूगर्भ विद्या, ज्योतिष और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रसायनविद्या को आधिदैविक विद्या कहा जाता था और शरीर विद्या, मनोविज्ञान तथा ब्रह्मविद्या को आध्यात्म विद्या। उस समय के वैज्ञानिक ग्रन्थ यद्यपि इस समय सर्वथा लुप्त हो गये हैं तो भी वेदों में उन विज्ञानों के सम्बन्ध के पर्याप्त निर्देश मिलते हैं जिनसे प्रतीत होता है कि वैदिक काल में उन विज्ञानों का पर्य्याप्त प्रचार था।

वेदों के भाष्यकारों को चूंकि स्वयं ऐसे विज्ञानों का परिज्ञान नहीं होता इसलिये वे वेदों में .आए. वैज्ञानिक निर्देशों को ठीक प्रकार समझ नहीं सकते। वेदों के कतिपय भागों के अध्ययन से प्रतीत होता है कि भारत भूमि में कई वैज्ञानिक अन्वेषण इतने गहरे हो चुके थे कि वैज्ञानिक अन्वेषणों के अग्रसर अमेरिका तथा युरोप के उन्नत देश भी अभी तक उस गहराई तक पहुंच नहीं पाये। इसी कारण अर्थात् "वैदिक-विज्ञान" की गहराई को समझ सकने के साधनों के न होने के कारण ही हम वेदों के कई अंशों के वास्तविक अभिप्रायों को समझ नहीं सकते। वास्तव में वेदों की पूर्ण तथा सन्तोषप्रद व्याख्या के लिये आवश्यक है कि व्याख्याता को सभी विज्ञानों और उनकी शाखाओं से पूर्ण परिचय हो। विना इस पूर्ण परिचय के वेदों के भाष्य के लिये यत्न करना दौर्भाग्य तथा अनिष्ट है।" वे आगे और लिखते हैं—

"It is perfectly plain, therefore, that it is only one that has attained, a thorough knowledge of Agriculture, Commerce, Geology, Astronomy, Hydrostatics, Igneology, Botany, Zoology, Physiology, and the Science of war, can alone be a fit interpreter of the Vedas and that, it is only a commentary written by such an expositor that can alone give full satisfaction and remove all doubts.

"इसलिये यह स्पष्ट है कि वही मनुष्य वेदों का योग्य भाष्यकार हो सकता है जिसे कि कृषि शास्त्र, व्यापार, भूगर्भशास्त्र, ज्योतिष, जल, स्थिति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विद्या, अग्नि विद्या, वनस्पति शास्त्र, जीव शास्त्र, शरीर शास्त्र, तथा युद्ध विद्या आदि का पूर्ण ज्ञान हो। ऐसे व्यक्ति द्वारा लिखा गया भाष्य ही केवल पूर्ण सन्तोष दे सकता है और सब प्रकार के संशयों को मिटा सकता है।"

हमने यहाँ पाश्चात्य और प्राच्य विद्वानों की सम्मतियाँ प्रदर्शित करदीं। विज्ञ पाठक समझ सकते हैं कि पं. बलदेव उपाध्याय का यह लिखना "...यह सिद्धान्त विद्वानों को पसन्द नहीं" कितना उपहासजनक है।

महर्षि दयानन्दजी की वेदभाष्य-शैली पर कतिपय बीस विद्वानों की सम्मतियाँ :—

प्रो० रुडल्फ हार्नले लिखते हैं :—"He is an independent student of the Vedas, and free from the trammels of traditional interpretation. The standard Commentary of the famous Sayanacharya is held of little account by him." § अर्थात्—वह वेदों को स्वतन्त्रता से पढ़ते हैं और परम्परागत (मध्यमकालीन) पद्धति की परवाह नहीं करते। प्रसिद्ध सायणाचार्य का भाष्य वे निष्प्रयोजन समझते हैं।"

ट्रान्सवाल (प्रिटोरिया) के प्रसिद्ध विद्वान् टामिस फ़िट्ज़ ने अपने व्याख्यान में कहा था—"कुछ पश्चिमी विद्वानोंने वेदों के सम्बन्धमें कहा है। मुझे इन विद्वानों के कथनपर बिल्कुल विश्वास नहीं है; क्योंकि इन पण्डितों को संस्कृतभाष्य और वेदों का ज्ञान नहीं के बराबर है इस बात पर हम केवल दयानन्द के भाष्य को प्रामाणिक समझते हैं" †

§ "वैदिक वाङ्मयका इतिहास" प्रथम भाग, द्वितीय खण्ड, प्रथम संस्करण, पृष्ठ ७४.

† "मासिक पत्रिका" पाखण्ड-खण्डिनी-पताका" काशी, वर्ष ४ जून १५, सन १९३९ ई. अङ्क ११ पृष्ठ ५, कॉलम १.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

काङ्गडी गुरुकुल के महाविद्यालय के भू. पू वेदाध्यापक, वेदा-चार्य पं. शिवशङ्कर शर्म्मा 'काव्यतीर्थ' लिखते हैं:-" सायण, महीधर, कात्यायन, आपस्तम्ब, शौनक यास्क आदिकोंने वेदों के अर्थ करजो दुर्म्मार्जनीय, अकथनीय लांच्छन वेदोंपर लगा गये हैं उनका निकालना दुःसाध्यसा हो गया है। यदि ये सब वेदोंपर टीका-टिप्पणी न कर जाते तो अच्छा था। परन्तु अब इन पर लोगों का इतना विश्वास हो गया है और भारतवासी ब्राह्मण भी इतने आलसी हो गए हैं कि ब्रह्मचर्य व्रत ग्रहण पूर्वक वेदों के सत्यार्थ का अन्वेषण करने में असमर्थ हैं। ऐसी घोर अन्धकार की अवस्था में पिता दयानन्दने ही वेदों की पुनःस्थापना की और वेदोंके सत्यार्थ जानने के लिए पूर्ण विधि उपाय और सङ्केत बतला गए। जिनकी सहायतासे आप भारतवासी वेदों के सत्यार्थ निकाल सकते हैं यदि आप इस कार्य्य में तत्पर हो जांए †।

पं. नरदेव शास्त्री, वेदतीर्थ अपने "वेद और आर्यसमाज" शीर्षक लेख ‡ में लिखते हैं:-" स्वामी दयानन्दजीने वेदभाष्य भी किए हैं और अपने वैदिक भाष्यों में पूर्ण प्रयत्न किया है कि वेदोंमें से इतिहास की गन्ध भी न आने पावे। उनके भाष्यों को देखकर स्पष्ट प्रतीत होता है कि उनको आमरण यही चिन्ता लगी रही कि 'बेद सब सत्य विद्याओं की पुस्तक हैं और इसी बात की सिद्धि के लिए उनका परम पुरुषार्थ रहा।" श्रीमद्दयानन्द-ब्राह्ममहाविद्यालय के भू. पू. आचार्य, श्री विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोधसंस्थानके अध्यक्ष पं. विश्वबन्धुजी शास्त्री, एम. ए., एम. ओ. एल. अपने "वेद और आर्यसमाज" शीर्षक

---

† 'वैदिक इतिहासार्थ निर्णय' भूमिका पृष्ठ ३४

‡ मासिक पत्रिका "गङ्गा" का "वेदाङ्क" प्रवाह २, जनवरी १९३२ ई., तरङ्ग १, पृष्ठ २५० कॉलम २

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लेख § में लिखते हैं :—" आर्यसमाजके संस्थापक स्वामी दयानन्दजी महाराज का वेदों के सम्बन्ध में जो विचार था, उसे नीचे की पंक्तियां पढ़ने पर सरलतासे समझा जा सकता है...' वेदार्थ करने की ठीक शैली प्रकृति प्रत्यय के अर्थों के आधार पर चलनेवाली यौगिक शैली ही है। वेदों के शब्दों के अनेक अर्थों को प्रकरणानुसार ग्रहण करना चाहिए। इस मर्म से अनाभिज्ञ लोग ही ' मेध ' को हिंसार्थ में और ' विश्वामित्र ' को व्यक्ति विशेष परक लगाते हैं।...."

डॉ. वासुदेव शरण अग्रवाल, एम ए., पी. एच. डी. अपने " वेदार्थ की अध्यात्मशैली " शीर्षक लेख * में लिखते हैं :... " वेदार्थ की परम्परा में सुदीर्घकाल के बाद स्वामी दयानन्दने पुनः अध्यात्म पक्ष एवं ब्रह्मवाद पक्षकी स्थापना की। पश्चिमी विद्वान् हठ-पूर्वक इस प्रणाली से पराङ्मुख रहे और समस्त ब्राह्मण ग्रन्थों की स्पष्ट साक्षीके होते हुए भी उन्होंने आध्यात्म किंवा ब्रह्मवाद सिद्धान्तको कभी पूज्य दृष्टि से नहीं देखा। "...

राज्यरत्न, व्याख्यानवाचस्पति श्री पं. आत्मारामजी अमृतसरी, बड़ौदा अपने " वेदमें सृष्टि-उत्पत्ति " शीर्षक लेख + में लिखते हैं :— मनुस्मृति के प्रथम अ० में महर्षि मनुका बड़ा गूढ़ श्लोक है जिसका भाव यह है कि ईश्वरने सृष्टि के आदिकालमें वेदके पात्रों को वेदके शब्दों द्वारा सृष्ट पदार्थों के नाम सिखाये। इस महत्त्वपूर्ण श्लोकने इतिहास वाद तथा कल्पना वाद का खण्डन कर दिया। योरोपवाले इतिहासवादी

§ वही, पृष्ठ २५१

* साप्ताहिक पत्र " दिवाकर " का ' वेदाङ्क ' आगरा, भाग १, दिनाङ्क २६-१०-१९३५ ई., अङ्क २८-२९ पृष्ठ १३०

+ वही, पृष्ठ १५१

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं और सायणवादी (सायण भाष्यवादी) निस्सन्देह कल्पनावादी ह। महर्षि मनु कहते हैं कि आदि कालमें सृष्टि के पदार्थों के बोधक वेद हैं। मनु का यह तत्त्व निरुक्त की अर्थ शैली तथा महर्षि दयानन्द की आर्ष शैली का पोषक है।"

श्री पं. द्विजेन्द्रनाथजी शास्त्री, वेदाचार्य अपने "वेदोद्धारक महर्षिदयानन्द" शीर्षक लेख + में लिखते हैं। "वेद के जितने प्राचीन तथा अर्वाचीन भाष्यकार—भट्ट भास्कर मिश्र, स्कन्दस्वामी, सायणाचार्य, उव्वट, महीधर, कपर्दीस्वामी, व्यङ्कटमाधव आदि हुए हैं, उन में से किसी की भी वेदों की वैज्ञानिकता की ओर दृष्टि नहीं पहुंची। सर्व प्रथम महर्षि दयानन्दने ही वेदों में अध्यात्म विद्याके साथ साथ आधिभौतिक भी भरा है, वैदिक साहित्य में क्रान्ति उत्पन्न होने वाली यह घोषणाकी थी जिसकी आधुनिक विद्वान् नतमस्तक होकर पुष्टि कर रहे हैं।"

श्री. पं. चन्द्रकान्तजी वेदवाचस्पति, आचार्य गुरुकुल विद्यालय, सोनगढ़ अपने "वेदार्थ के वास्तविक साधन" शीर्षक लेख* में लिखते हैं:-"ब्राम्हण ग्रन्थ रचयिता महर्षियों के बाद पौराणिक काल में, आचार्य उव्वट, महीधर तथा सायणादिने वेदों पर भाष्य किए हैं। इसी प्रकार आधुनिक युग में मैक्समूलर, विटनी, ग्रिफिथ आदि पास्चात्य लेखकों ने भी वैदिक साहित्य पर बहुत कुछ लिखा है; परन्तु इन विद्वानों के ग्रन्थों में वेदों की आत्मा का विकास नहीं हुआ है। पौराणिक (पुराणकालीन) भाष्यकार तो याज्ञिकवाद, देवतावाद,

---

+ "नारायण अभिनन्दन ग्रन्थ" प्रथम संस्करण, पृष्ठ १२५.

* मासिक पत्र "वैदिक धर्म" का "वेदाङ्क" वर्ष १९, जनवरी १९३५, ई, अङ्क १, पृष्ठ ९५.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऐतिहासिक वाद आदि वन्दोंकी बाधाओं में जकड़ गए हैं। वे अपने समय की रूढ़ियों से ऊपर नहीं उठ सके हैं। उन्होंने पूर्व परिग्रहद्वारा रंगी ऐनकों से वेद को देखा है, यही हालत पाश्चात्य लेखकों की भी है। एकतो इनके भाष्य अक्षरश: अनुवादमात्र हैं, फिर ये अनुवाद लौकिक तथा वैदिक संस्कृत में भेद करते प्रतीत नहीं होते। इस पर मज़ेकी बात तो यह है कि ये सायणाचार्य के ही पद-चिन्ह पर चलते हैं और विकासवाद (अशुद्ध अर्थों में) की रट लगा लगा कर वेदों के असली तात्पर्य से दूर हो गए हैं। इसलिए वैदिक साहित्य को समझने के लिए इनके लेख प्रामाणिक नहीं माने जा सकते।

ब्राह्मणकाल, पौराणिक भाष्यकार और पाश्चात्य भाष्यकारों के अतिरिक्त आधुनिक समय में वेद के ऊपर युग परिवर्तनकारी कलम उठाने वालों में सबसे प्रमुख नाम महर्षि दयानन्द का है। महर्षिके भाष्यों में से वेद जीवित और जागृत प्रतीत होने लगते हैं।

महर्षि के भाष्यका एक एक मंत्र पूर्व के भाष्यकारों की त्रुटियों का क्रियात्मक समाधान कर रहा है।"........

वैदिक गवेषक पं. भगवद्दत्तजी बी.ए. लिखते हैं:—सायण भाष्य को ठीक समझने वाले लोग दयानन्द सरस्वती के भाष्य के ठीक विषय में कुछ नहीं 'कह सकते। महाविद्वान् सायण का भाष्य ऊपर से महत्त्ववाला दिखाई देता हुआ भी वेद का यथार्थ और सीधा अर्थ नहीं है। पाश्चात्य विद्वान् भी दयानन्द सरस्वती के भाष्य के विषय में कुछ नहीं कह सकते। उन का परिश्रम, शुभेच्छा, अनुसन्धानशक्ति से एक शताब्दी में किया गया अर्थ भी ठीक अर्थ नहीं, क्योंकि इस में पूर्वापर सम्बन्ध का अभाव है' और संदिग्ध विषयों को प्रमाणभूत मानकर अर्थ किया गया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वेदार्थ तो वेद से ही होना चाहिए। इस विषय में दयानन्द सरस्वती का विचार सुस्पष्ट है, उसकी आधार शिला अभेद्य है। वेद के सूक्त भिन्न भिन्न नामों से एक ईश्वर को ही सम्बोधन कर के गाए गए हैं ‡ ”

श्री आचार्य पं. बलवीर जी शास्त्री, साहित्योपाध्याय, अपने “ यास्कीय वेदार्थ शैली और महर्षि दयानन्द ” शीर्षक लेख † में लिखते हैं :—“ महर्षि दयानन्द तपस्वी भी थे, तथा पूर्ण तार्किक भी। इसी लिए महर्षि दयानन्द की व्याख्या में अन्यों की अपेक्षा यही अन्तर है कि वह यौगिक है, रूढ़ एवं योग रूढ़ नहीं। ”

पं० राम बिहारी लालजी शास्त्री, वेदतीर्थ, एम. ए., एल.एल. बी., संस्कृत प्रोफेसर डी. ए. वी. कॉलेज कानपुर। अपने “ स्वामी दयानन्द सरस्वती की वेदभाष्यशैली सर्वोत्तम है ” शीर्षक लेख * में लिखते हैं—

“.. स्वामी दयानन्द की वेदभाष्य शैली जो नैरुक्तिक है सर्वोत्तम है क्योंकि वह वैदिक व्याकरण और वैदिक कोष निघण्टु के अनुकूल अर्थ देती है। वह वेदभाष्य सब शैलियों से प्राचीन आदि ऋषियों की शैली है। इसके अनुसार किया गया भाष्य युक्ति वा तर्क से ठीक सिद्ध होता है। ”....

चतुर्वेदभाष्यकार पं. जयदेव शर्मा ‘ विद्यालङ्कार ’ ‘ मीमांसा-तीर्थ ’ अपने “ वेदभाष्य और वेद विषयक साहित्य ” शीर्षक लेख § में

---

‡ “ वैदिक वाङ्मय का इतिहास ” भागप्रथम, द्वितीय खण्ड, प्रथम संस्करण, पृष्ठ ८०–८१. † साप्ताहिक पत्र “ दिवाकर ” का “ वेदाङ्क ” आगरा, भाग १ सन् १९३५ ई. अङ्क २८–२९, पृष्ठ ८६, कालम २.
* “ वैदिक सिद्धान्त ” ग्रन्थ, (प्रथम संस्करण १९२५ ई.) पृष्ठ ५८.
§ “ नारायण अभिनन्दन ग्रन्थ ” पृष्ठ ३१६.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिखते हैं:—"महर्षि दयानन्द ने जिस प्रकार के वेदभाष्य प्रस्तुत किए उनकी अपनी अद्भुत विशेषता है, महर्षि दयानन्द अपने वेदभाष्यों से जहाँ जनता के बीच वैदिक संस्कृति का साम्राज्य स्थापित करना चाहते थे वहाँ साथ ही शिक्षित और अशिक्षित जनता के बीच में अपने से पूर्व के भाष्यकारों के भाष्यों से फैले अनेक भ्रमों को दूर भी करना चाहते थे। यही कारण है कि उनकी भाष्य शैली अन्य भाष्यकारों से कहीं भिन्न है। यदि महर्षि दयानन्द केवल भाष्य रचने के उद्देश्य से भाष्य रचते तो कदाचित् वे भी सायण, महीधर, उव्वट के समान कोरे टीकाकारों की शैली से अन्वय योजना के साथ साथ पर्याय पद रखकर भावार्थ लिखते जाते; कई पक्ष दिखा देते, निश्चय से ऐसा करने से उनका भाष्य संस्कृतज्ञ पण्डितजन—समाज में बहुत भारी आदर पाता। यदि वे दार्शनिक शैली से वा अध्यात्म दृष्टि से व्याख्या करते तो वे एक अपूर्व आदर पाते परन्तु महर्षि दयानन्द के समक्ष ऐसा विचार-लक्ष्य लवलेश मात्र भी न था। आपने अपने भाष्य में सर्व प्रथम पद पाठको दर्शाकर अनन्तर पदार्थ भाष्य किया है अर्थात् संहिता क्रमसे पढ़े वेद मंत्र के पदों के पृथक् पृथक् अर्थ संस्कृत में पर्याय दे देकर बतलाया है, फिर अन्वय योजना बतलाई है, इसके पश्चात् अन्वयानुसारी भाषार्थ किया गया है और इसके अनन्तर भावार्थ दिया गया है।"

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के प्रोफेसर पं. बलदेव उपाध्याय एम्. ए., साहित्याचार्य अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ + में लिखते हैं—"अब दूसरी पद्धति की रूपरेखा का निरीक्षण तथा परीक्षण कीजिए। इस पद्धति के उद्भावक भारत के प्रसिद्ध धर्म सुधारक स्वामी दयानन्द

+"आचार्य सायण और माधव" पृष्ठ १२१ से १२३ (संवत् २००३ वि. में हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग द्वारा प्रकाशित, प्रथम संस्करण)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सरस्वती जी थे। इसके अनुकूल आपने ऋग्वेद के अनेक मण्डलों के ऊपर अपना नवीन भाष्य भी बनाया था। ऋग्वेद के लगभग दो तिहाई भाग पर आपका भाष्य है और यजुर्वेद की पूरी संहिता के ऊपर। स्वामीजी के निधन के अनन्तर समाज में अन्य वैदिक विद्वानों की कमी नहीं हुई और स्वामीजी का उद्दिष्ट कार्य विशेष अंश में परिपूर्णसा दिखाई पड़ता है। अजमेर के वैदिक यन्त्रालयने चारों संहिताओं की तथा शतपथ ब्राह्मण को सुलभ मूल्य में छाप कर, प्रकाशित कर बड़ा ही प्रशंसनीय कार्य किया है। आजकल अजमेर से ही अथर्ववेद का भाष्य हिन्दी में बड़े ठाट बाट से प्रकाशित हुआ है। इतना ही नहीं, आर्य समाज के प्रसिद्ध विद्वान् आर्य मुनिजीने ऋग्वेद के अवशिष्ट भाग पर अपनी नवीन टीका लिखकर स्वामी दयानन्द के कार्य की एक प्रकार से पूर्त्ति कर दी है। औंध के * महाराष्ट्रीय आर्य समाजी पण्डित सातवलेकर ने विभिन्न संहिताओं का विशुद्ध संस्करण प्रकाशित कर हमारा बड़ा उपकार किया है। उन्होंने वेद के ऊपर, विशेषतः अथर्व पर स्वमतानुकूल व्याख्या लिखी है जिसका आदर और प्रचार आर्य-समाज की प्रेमी जनता में विशेष रूप से है। गुरुकुल से सम्बन्ध अन्य विद्वानों ने भी वेदके विभिन्न भागों पर विशेष परिश्रम के साथ ग्रन्थ लिखे हैं। इस प्रकार आर्य समाजने वेद प्रचार में बहुत कुछ योग दान किया है इसके लिए वे हमारी श्रद्धा के भाजन हैं। स्वामीजी ने अपने भाष्य में अनेक विशिष्ट बातों का उल्लेख किया है। इस भाष्य में वेदों के अनादि होने का सिद्धान्त प्रतिपादित है। आपकी दृष्टि में वेद में लौकिक इतिहास का सर्वथा अभाव है। वेदों के सब शब्द यौगिक तथा योग रूढ़ हैं, रूढ़ नहीं। यह सिद्धान्त स्वामीजी की अर्थ-निरूपण पद्धति

---

* अब 'आनन्द आश्रम, पारड़ी, ज़िला सूरत'—लेखक।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की आधार शिला है। जितने इन्द्र, अग्नि, वरुण आदि देवता-वाचक शब्द हैं वे यौगिक होने से एक ही परमात्मा के वाचक हैं। स्वामीजी इस प्रकार आध्यात्मिक शैली के मानने वाले हैं। अंशतः यह सिद्धान्त ठीक है। निरुक्त कारने स्पष्ट शब्दों में कहा है जितने देवता हैं वे सब एकही महान् देवता परमेश्वर की विशिष्ट शक्ति के प्रतीक मात्र हैं। "महाभाग्याद् देवतायाः एक आत्मा बहुधा स्तूयते। एकस्यात्मनोऽन्ये देवाः प्रत्यङ्गानि भवन्ति" (निरुक्त ७।४)।

ऋग्वेद का स्पष्ट प्रतिपादन है–'एकं सद्विप्राबहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः" (ऋ. मं. १।१६४।४६)।

अतः अग्नि, इन्द्र आदि देवताओं को ऐश्वर्यशाली परमेश्वर का रूप मानना सर्वथा उचित है।"

गुरुकुल काङ्गड़ी के इतिहास के अध्यापक, परलोकवासी आचार्य रामदेवजी एम. ए. अपने "दिग्विजयी दयानन्द" शीर्षक लेख × में लिखते हैं :—

"महर्षि दयानन्द की वेदभाष्य-प्रणाली भी निस्सन्देह क्रान्तिकारी थी। पाश्चात्य विद्वानोंने इस प्रणाली को पहले तो अप्राकृतिक, असम्भव तथा बेहूदा बतलाया, परन्तु उन्होंने पीछे जाकर इसकी वैज्ञानिकता तथा सतर्कता को स्वीकार किया। स्वामी दयानन्द सर्व प्रथम भाष्यकार थे, जिन्होंने वेदों को सब सत्य विद्याओं का आदि स्रोत घोषित किया, और उनमें आधुनिक विज्ञानके बीजों को प्रदर्शित किया।"...

डॉ मङ्गल देवजी शास्त्री, एम. ए., डि. फिल्. पी. एच. डी. कार्य निवृत्त आचार्य संस्कृत कॉलेज बनारसने अपने भाषण में कहा

× मासिका पत्रिका "सुधा" लखनऊ का "दयानन्दाङ्क" वर्ष ७, खण्ड १ अक्तूबर १९३३ ई. संख्या ६ पृष्ठ ४५८ कालम १

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

था–"...वेदके विषय में आचार्य दयानन्द का सबसे बड़ा महत्त्व, हमारे मत में, इस बात में, है कि उन्होंने हमको 'वेदके मन्त्र केवल कर्मकाण्ड स्वरूप यज्ञ साधन हैं (कर्म करणा हि मन्त्राः), और अतएव 'उनका अर्थही नहीं होता अथवा उनके अर्थज्ञान की आवश्यकता नहीं हैं' ('अनर्थका हि मन्त्राः') इन कृत्रिम सिद्धान्तोंसे हटाकर वेद को उसके मौलिक स्वरूप में, सार्वभौम और उदात्त मानव धर्म की प्रतिपादक पुस्तकके रूपमें देखने का फिर से वह मार्ग दिखलाया जो प्रायः सहस्रों वर्षों से हमसे तिरोहित हो चुका था"*

पं. धर्म देवजी 'सिद्धान्तालङ्कार' 'विद्यावाचस्पति' साहित्य भूषण' 'संस्कृत-धुरीण' अपने "महर्षि दयानन्दकी वेदभाष्य शैली शीर्षक निबन्ध × में लिखते हैं :–"महर्षि दयानन्द की वेद भाष्यशैली आर्ष तथा महर्षि दयानन्द के तपस्वी योगी और अनेक विद्या निष्णात होने के कारण उपलब्ध वेदभाष्यों में सर्वोत्तम है जो वेदों के प्रति श्रद्धा के भाव को दृढ़ कर सकती है। सायणादि भाष्य देखनेसे तो वस्तुतः किसी भी विचारशील व्यक्ति की वेदों पर श्रद्धा रहनी असम्भवसी है। महर्षि के भाष्य में जीवनोपयोगी सब आवश्यक तत्त्वों का अत्युत्तम उपदेश है विशेषतः मन्त्रों के जो विशाल और महत्त्व पूर्ण अर्थ उन्होंने दिये हैं वे प्रत्येक जिज्ञासु के लिए बड़े ही उपयोगी हैं।"

श्री. पं. ब्रह्मदत्तजी 'शास्त्री' 'काव्यतीर्थ' 'साहित्योपाध्याय', एम. ए., एम. ओ. एल., एम. आर ए. एस. अपने

---

* मासिक पत्र "सार्वदेशिक" देहली, वर्ष ३०, अप्रैल १९५० ई. अङ्क १, पृष्ठ ७८२.

× "आर्यसिद्धान्त विमर्श" प्रथम संस्करण, पुष्ठ १०९

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

" स्वामी दयानन्दः वेदों के अद्वितीय ज्ञाता और व्याख्याता " शीर्षक लेख * में लिखते हैं।—

" १९ वीं शताब्दी में वेदों का इतना बड़ा ज्ञाता और व्याख्याता दूसरा कोई व्यक्ति नहीं हुआ जैसे महर्षि दयानन्द।...पाणिनीने धातु पाठ में जिन धातुओं के अनेक अर्थ किए हैं, उनमें से कोई अर्थ तो प्रसिद्ध रह गया है, कोई अप्रसिद्ध। सायणादिने उसी प्रसिद्धार्थ को ले लिया है; अप्रसिद्ध को छोड़ दिया है। परन्तु महर्षि दयानन्दने धातु पाठोक्त सारे अर्थों की प्रकरणानुकूल योजना की है। इससे वेदभाष्य बड़ा गम्भीर और वेदार्थ बड़ा व्यापक हो गया है। "

श्रीनगेन्द्रनाथवसु 'प्राच्यविद्या महार्णव' 'सिद्धान्त-वारिधि' 'तत्त्वचिन्तामणि' एम. आर. ए. एस. अपने प्रसिद्ध कोष + में लिखते हैं :—"...महर्षि दयानन्द का सबसे महान् कार्य वेदों का सच्चा गौरव प्रकट कर प्रतिष्ठा के उच्च आसन पर विराजमान करा देना है। स्वामीजी के मतमें वेदों के पढ़ने का अधिकार सब को है। स्वामीजीने अपने वेदभाष्यकी एक अत्युत्तम भूमिका संस्कृतमें लिखी है। उसमें वेदों का गौरव वा महत्त्व बड़ी उत्तमतासे दर्शाया है। ऋग्वेद का ६/८ तथा यजुर्वेद का सम्पूर्ण भाष्य रचते ही उनका देहपात हो गया। स्वामीजी केवल संहिता भाग को मानते और उसका स्वतः प्रमाण होना स्वीकार करते थे। वेद केवल एक निराकार, निर्विकार, सर्वव्यापक, सर्वज्ञ, सच्चिदानन्द स्वरूप सृष्टिकर्त्ता परमात्मा की उपासना का उपदेश देते हैं।...."

---

* साप्ताहिक " आर्यमित्र " का " ऋष्यङ्क " वर्ष ३१, कार्त्तिक कृष्णा ३०, दीपावली, संवत् १९८५ वि. अङ्क ६४—६५, पृष्ठ ६१—६२

+ " हिन्दी विश्वकोष " पृष्ठ ६८४, ६८५, 'आर्यसमाज' पर (सन् १९१५ ई. कलकत्ता संस्करण)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

योगिराजश्री अरविन्दघोषजी की अमूल्य सम्मति :—

If Vedic god-heads express the power of a supreme deity who is Creator, ruler and father of the universe, then there must inevitably be in the Vedas a large part of Cosmology, the law of Creation and of Cosmos. Dayanand asserts the presence of such a cosmic element, he finds in the Veda the secrets of creation and the law of nature by which the omniscient governs the world."*

अर्थात्—"वेदों के देवता परमात्मा की दिव्य शक्तियों का प्रदर्शन करते हैं जो कि इस संसारका कर्त्ता, सञ्चालक तथा पिता है तो यह अनिवार्यतया मानना पड़ेगा कि वेदों में सृष्टि-विज्ञान वर्णन अवश्य है। महर्षि दयानन्द इस तत्व को वेदों में पाते हैं। वेदों में वे सृष्टि-विज्ञान के नियमों का प्रतिपादन करते हैं। प्राकृतिक विधान या नियामक तत्वों का विवरण ऋषिने वेदों में प्रदर्शित किया कि जिन नियमों के द्वारा यह संसार-यन्त्र सञ्चलित हो रहा है।"

"There is nothing fantastical in Dayanand's idea that Veda contains truths of science as well truths of religion. I will add my own conviction that Veda contains other truths of science which the modern world does not possess at all. Immediately the character of the Veda is fixed in the sense Dayanand gave to it, the merely ritual mythological and polytheistic interpretation of Sayanacharya collapses, and the merely natura-

* "नारायण अभिनन्दन ग्रन्थ" पृष्ठ १३५–१३६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

listic and materiological interpretation of Europeans also collapses. We have instead, one of the world's sacred books and the divine word of lofty and noble religion. †

अर्थात्–" महर्षि दयानन्द की इस धारणा में कि वेद धर्म और पदार्थ विद्याके भण्डार हैं, कोई अयुक्त वा अनहोनी बात नहीं है। मैं उनकी उक्त धारणा में अपना विश्वास और जोड़ना चाहता हूँ कि वेदों में पदार्थ-विद्या की अन्य ऐसी सचाईयाँ भी हैं जिनको आजकल का संसार यत्किञ्चित् भी नहीं जान पाया है। एक बार वेदों की स्थिति स्वामी दयानन्द के अभिमतानुसार समासीन हो जाने दो, तो फिर देखोगे कि सायणाचार्य का केवल रूढ़ि-परक और कपोल-कल्पित सर्वेश्वर वाद पर आश्रित वेदों के भाष्य का भवन अपने आप गिर जायगा, और उसी के साथ साथ पाश्चात्य विद्वानों का केवल भौतिक पदार्थ और प्राकृतिक पूजन-परक भाष्य भी धराशायी हो जायगा। और वेद एक उच्च तथा गौरवास्पद ईश्वरीय ज्ञान पुस्तक के रूप में हमारे पास शोभायमान होगा।"

" In the matter of Vedic interpretation, I am convinced that whatever may be the final complete interpretation, Dayanand will be honoured as the first discoverer of the right clues. Amidst the chaos and obscurity of old ignorance and age-long

---

† मासिक पत्रिका "सुधा" का "दयानन्दाङ्क" वर्ष ७, अक्टूबर १६, सन् १९३३ ई., खण्ड १, संख्या ६, पृष्ठ ४६२, तुलना करो "आर्य सिद्धान्त विमर्श" पृष्ठ १२१, पं. यशःपाल 'सिद्धान्तालङ्कार' कृत "वैदिक सिद्धान्त दर्पण" प्रथम संस्करण पृष्ठ ४०–४१

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

misunderstanding, his was the eye of direct vision that pierced into the truth and fastened on that which was essential. He has found the keys of the doors that time had closed and rent asunder the seals of the imprisoned fountains."‡

अर्थात्–" वेदभाष्य के सम्बन्ध में, मेरा यह पूर्ण विश्वास है कि अन्तिम निर्णय के सर्वाङ्गपूर्ण भाष्य चाहे कोई भी हो, परन्तु महर्षि दयानन्द का भाष्य सबसे प्रथम कोटि में प्रतिष्ठित होगा अर्थात् सर्वोत्तम समझा जायगा। वे भाष्य के रहस्यों को खोलने के लिए सर्व प्रथम ठीक चाबी समझी जायगी। प्राचीन काल के अज्ञान अन्धकार में, तथा चिरकाल प्रचलित भ्रान्तियों के मध्य में महर्षि दयानन्द की दिव्य दृष्टि सीधी वेदार्थ निहित सत्यता के अन्दर प्रविष्ट हुई और वेदों के यथार्थ सत्यार्थ को आविष्कृत करने के लिए सच्ची चाबी ढूँढ़ निकाली और उस सत्यताको प्रकाशित किया जो चिरकाल से असत्य एवं भ्रमपूर्ण भाष्यों में बन्दी के समान पड़ी थी।"

महर्षि की संस्कृत की अलौकिक विद्वत्ता के विषय में मैडम ब्लेवेस्टकी ने लिखा था–" Certainly there was no better or grander orator in Hindi or Sanskrit than

‡ " नारायण अभिनन्दन ग्रन्थ " पृष्ठ १३६, सिद्धान्त शिरोमणि पं. राजेन्द्रनाथजी शास्त्री कृत " भूमिका प्रकाशः " प्रथम संस्करण पृष्ठ १४७–१४८, " वैदिक सिद्धान्त दर्पण " प्रथम संस्करण, भूमिका पृष्ठ १–२, साप्ताहिक " आर्य-मित्र " का " ऋष्यङ्क " वर्ष ४४, दीपावली, कार्तिक सं. १९९८ वि. अङ्क ३९–४०, पृष्ठ ५६ कॉलम २, " आर्य सिद्धान्त विमर्श " पृष्ठ १०९–११०.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Dayanand throughout the breadth and length of this land" *

अर्थात्–"समस्त भारत वर्ष में, संस्कृत तथा हिन्दी में महर्षि दयानन्द के समकक्ष कोई भी विद्वान् प्रगल्भ वक्ता नहीं है।"

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट प्रकट होता है कि महर्षि दयानन्दजी का वेदभाष्य, सर्वोत्तम, नैरुक्तशैली के अनुकूल अद्भुत है।

हमें पूर्ण आशा तथा विश्वास है कि महर्षि दयानन्दजी के वेद-भाष्य का घर घर में प्रचार होगा। यदि किन्हीं सज्जन को इस अनुशीलन के अध्ययन से महर्षि दयानन्दजी के वेदभाष्य को अध्ययन की अभिरुचि होगी तब हम अपना परिश्रम सफल समझेंगे।

इत्यलम्।

सूचना

STOCK VERIFY 2020

पृष्ठ ३० में टिप्पणी में जहां कवष ऐलूष का प्रसंग है वहां निम्न टिप्पणी और होनी चाहिए थी पाठक नोट करलें।

"देखो "सार्वदेशिक" मासिक पत्र देहली, वर्ष ३० एप्रिल १९५० ई० अंक १ पृष्ठ ७६३ से [illegible] तक प्रकाशित मेरा "ऋषि कवष ऐलूष का वर्णन" शीर्षक लेख।

—लेखक

लेखक के अप्रकाशित ग्रन्थ

नमस्ते विमर्श, यज्ञोपवीत संस्कार विमर्श, वामनावतार की कल्पना, आर्य संस्कृति पर कुठाराघात ('हिन्दू जाति का उत्थान पतन' पर एक दृष्टि) भारत की प्राचीन संस्कृति पर एक आलोचनात्मक दृष्टि, लगभग ३०–३५ रचनाएं तैयार हैं। पो. बा. २५० कानपुर

---

* Theosophist 1883. भूमिका प्रकाश पृष्ठ १४८.

२००० दि. १–९–१९५० जयदेव ब्रदर्स प्रकाशन

पुस्तकालय गुरुकुल कांगड़ी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राज्यरत्न राजमित्र महात्मा आत्मारामजी अमृतसरी तथा विद्वद्वर्य्य पं० भीमसेनजी शर्म्मा द्वारा संस्कारों की व्याख्या पर एक महत्व पूर्ण पुस्तक

संस्कार-चन्द्रिका

के नाम से प्रकाशित हो चुकी है। इसकी अब बहुत ही थोड़ी प्रतियां रह गई हैं जो कि जल-प्रलय के समय में कुछ खराब हो गईं थीं परन्तु फिर भी पाठ्य विषय बराबर देख कर उन महानुभावों को जिन को इस की अत्यन्त आवश्यकता होती है ५) में दी जाती है। अब कागज़ का नियंत्रण हट जाने से हमने, इसके नवीन संस्करण के छपवाने का प्रबन्ध कर दिया है वह शीघ्र ही जनता के सन्मुख बड़ी बढ़िया सुन्दर छपाई से सुसज्जित कर के प्रकाशित की जाएगी। इसका मूल्य लगभग ८) आठ रुपए होगा जो सज्जन २) भेज कर नाम लिखवा देंगे उन्हें डाकव्यय जो १) के लगभग होगा न देना पड़ेगा।

नीचे की स्लिप अनुसार नाम, पता मनीआर्डर कुपन पर लिख भेजें।

जयदेव ब्रदर्स, आत्माराम पथ, बड़ोदा

मैं दो रुपए भेज रहा हूं। संस्कार-चन्द्रिका का सचित्र षष्ठ संस्करण मुझे प्रकाशित होने पर शेष मूल्य वी. पी. से वसूल करके भेजदें।

इसमें कुछ न लिखें

नाम ____________________

पूर्ण पता ____________________

पो० ____________________

र. नं. ________
दि. ________
मू. प्राप्त
वी. पी. भेजा ________

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्री राजमित्र राजरत्न स्व० महात्मा आत्मारामजी (अमृतसरी)

जन्म ६ जून १८६६ मृ० २५ जु...

आर्य समाज के एक लब्ध प्रतिष्ठ लेखक व्याख्या..., आर्यन फिलॉसोफर रचयिता संस्कारचन्द्रिका, सृष्टिविज्ञान, ... वैदिक विवाहादर्श, ब्रह्मयज्ञ, आर्य धर्मेन्द्र जीवन, महर्षि ... जीवनी (उर्दु) अनुवादक सत्यार्थप्रकाश (उर्दु-गुरुमुखी) इ० इ० ।

अब संस्कारचन्द्रिका का नवीन संस्करण शीघ्र छपेगा ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar